३. यदि अकालवर्ष पृथ्वीवल्लभ के मंत्री ने महाराज अविनीत द्वारा प्रदत्त ग्राम का दान ९३७ ई० से ९६८ के बीच किया था, और इसी समय मर्करा-ताम्रलेख का पुनर्लेखन कराया गया था, तो लेख में ग्रामदान करने का समय शक सं० ३८८ (४६६ ई०) क्यों लिखवाया गया ?

४. तथा पुनर्लेख में अविनीत राजा की वंशावली और विरुदावली को तो ज्यों का त्यों रहने दिया गया है, किन्तु उनके द्वारा दिये हुए ग्राम का दान करनेवाला पुरुष जिस राजा अकालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ कृष्ण तृतीय का मन्त्री था, उस राजा के नाम तक का उल्लेख नहीं किया गया तथा उसके मन्त्री के नाम को भी अज्ञात रखा गया। ऐसा क्यों किया गया ?

५. और यदि दान से सम्बन्धित देशीयगण-कोण्डकुन्दान्वय के आचार्यों के नाम ताम्रपत्रलेख में पुनर्लेखन के समय अर्थात् पाँच सौ वर्ष बाद जोड़े गये हैं, तो पुनर्लेखन कराने वाले अकालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ को यह कैसे मालूम हुआ कि ५०० वर्ष पहले राजा अविनीत ने इन्हीं आचार्यों को बदणेगुप्पे ग्राम दान में दिया था और इन आचार्यों का गुरुशिष्य-क्रम यही था, तथा ये देशीयगण एवं कुन्दकुन्दान्वय के थे ?

६. यदि इन गुणचन्द्रादि के शिष्य चन्दणन्दी आचार्य को राजा अविनीत ने ग्रामदान नहीं किया था, तो भी ताम्रपत्र में अकालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ ने ऐसा लिखवा दिया था, तो उसके द्वारा इस असत्य बात को लिखवाये जाने का क्या प्रयोजन था? अथवा ये आचार्य देशीयगण और कुन्दकुन्दान्वय के नहीं थे, तो इनके साथ ये गण और अन्वय क्यों जोड़े गये?

मर्करा-ताम्रपत्र लेख में पाँच सौ वर्ष पूर्व की घटना जोड़ी गयी, यह कल्पना उपर्युक्त असामान्य, जटिल प्रश्नों को जन्म देती है, जिनका कोई समाधान डॉ० गुलाबचन्द्र जी चौधरी या अन्य किसी के पास नहीं हो सकता। अतः यह कल्पना युक्तियुक्त नहीं है। हम देखते हैं कि ३७० ई० के नोणमंगल-लेख (क्र० ९०) में राजा अविनीत के पिता माधववर्मा द्वितीय के द्वारा मूलसंघानुष्ठित जैनमंदिर को भूमि एवं कुमारपुर ग्राम दिये जाने का वर्णन है।[१००] नोणमंगल के ही ४२५ ई० के लेख (क्र० ९४) में स्वयं अविनीत (कोङ्गणिवर्मा द्वितीय) के द्वारा मूलसंघ के चन्द्रनन्दी आदि आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठापित उरनूर के जिनालय को वेनैल्करनि ग्राम का दान किये जाने का कथन है।[१००] तथा मर्करा-ताम्रपत्रलेख में भी उन्हीं राजा अविनीत के द्वारा तळवननगर के जिनालय के लिए बदणेगुप्पे गाँव के दान का उल्लेख है, वह भी उन्हीं चन्दणन्दी

१००. देखिये, 'पुरातत्त्व में दिगम्बरपरम्परा के प्रमाण' नामक पंचम अध्याय के चतुर्थ प्रकरण में उक्त शिलालेखों के मूलपाठांश।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्य को, जिनका उल्लेख उपर्युक्त ४२५ ई० के नोणमंगल-लेख (क्र.९४) में हुआ है। अत: मर्करा-ताम्रपत्रलेख में अविनीत द्वारा देशीयगण और कुन्दकुन्दान्वय के चन्दणन्दी भटार को शक सं० ३८८ में बदणेगुप्पे ग्राम दिये जाने की जो घटना वर्णित है, उसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

अत: सिद्ध है कि पाँच सौ वर्ष पूर्व की उक्त घटना मर्करा ताम्रपत्रों के पुनर्लेखन के समय में नहीं जोड़ी गयी है, अपितु वह ताम्रपत्रों में पूर्वलिखित थी। उसे पुनर्लेखन के समय पुन: लिख दिया गया। केवल राजा अविनीत के मन्त्री का नाम हटाकर अकालवर्ष-पृथुवीवल्लभ के मंत्री का उल्लेख कर दिया गया तथा उससे सम्बन्धित अन्य वृत्तान्त भी जोड़ दिया गया। इस तर्कसंगत अनुमिति से उपर्युक्त समस्त जटिल प्रश्न निरस्त हो जाते हैं। अत: यह सिद्ध होता है कि मर्करा-ताम्रपत्रलेख अंशत: कृत्रिम है, पूर्णत: नहीं।

किन्तु, प्रो० एम० ए० ढाकी ने एक अन्य हेत्वाभास के द्वारा उक्त पाँच सौ वर्ष पूर्व की घटना को भी असत्य सिद्ध करने की चेष्टा की है। वे लिखते हैं- ''प्रेमी जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मर्कराताम्रपत्र में उल्लिखित श्री विजयजिनालय, जिसके कुन्दकुन्दान्वयी आचार्य चन्दणन्दिभटार को बदणेगुप्पे ग्राम के दान का उल्लेख है, ८ वीं शती ई० के अन्त में गंगवंशी राजा मारसिंह द्वितीय के सेनापति श्रीविजय ने मान्यनगर में बनवाया था। अत: कुन्दकुन्दान्वय ८ वीं शती ई० से प्राचीन नहीं हो सकता है।''[१०१] इसका तात्पर्य यह है कि मर्कराताम्रपत्र में शकसंवत् ३८८ में कोङ्गणिमहाधिराज अविनीत द्वारा चन्दणन्दिभटार को ग्रामदान किये जाने का जो उल्लेख है, वह असत्य है। इससे मर्करा ताम्रपत्रलेख का जाली होना सूचित होता है। किन्तु आगे NOTES AND REFERENCES (S. N. 29) में प्रो० ढाकी लिखते हैं कि ''वस्तुत: वह कथन प्रेमी जी का नहीं है, अपितु किसी अन्य लेखक का है, जिसका ग्रन्थ अभी मेरे पास नहीं है।''[१०२]

---

१०१. "But the Jaina temple to the pontiff of which the grant was addressed in this charter is Vijaya-Jinālaya of Mānyanagara or Mānyapura, Maṇṇe in Gaṅgavāḍi, the temple known to have been founded by Vijaya, general of Gaṅga Mārsiṁha II in c. late eighth century A.D. as shown by Premi ! The mention, in this charter, of Koṇḍakundānvaya can not, therefore, push back that anvaya's antiquity to any century prior to the eighth" (The Date of Kundakundācārya, Aspects of Jainology, Vol. III, p. 190).

१०२ "I lately realised it was not Premi, but some other author whose work is currently not handy." (The Date of Kundakundācārya, Aspects of Jainology, Vol. III, p.202).

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यह सत्य है कि राजा शिवमार द्वितीय के पुत्र मारसिंह के सेनापति श्रीविजय ने ८ वीं शताब्दी ई० के चतुर्थपाद में मान्यनगर में अर्हदायतन (जिनालय) बनवाया था और शक सं० ७१९ (७९७ ई०) में उसके लिए 'किषु-वेक्कूर' ग्राम दान किया था।[१०३] किन्तु मर्करा-ताम्रपत्र-लेख में 'श्रीविजयजिनालय' नाम से उसी जिनालय का उल्लेख है, इस मान्यता को सही सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सेनापति श्रीविजय द्वारा मान्यपुर में बनवाये गये जिनालय को तो इस घटना का उल्लेख करने वाले दानपत्र में भी 'श्रीविजयजिनालय' नाम से अभिहित नहीं किया गया है। उसमें उसे केवल 'जिनेन्द्रभवन' या 'अर्हदायतन' कहा गया है।[१०३]

ढाकी जी की उक्त मान्यता को मिथ्या सिद्ध करनेवाला दूसरा हेतु यह है कि श्रीविजय ने मन्दिर का निर्माण मान्यनगर में कराया था, लेकिन मर्करा-ताम्रपत्र में उल्लिखित श्रीविजय-जिनालय तळवननगर में स्थित था।

तीसरा हेतु यह है कि श्रीविजय ने मान्यनगर में जिनालय का निर्माण ८वीं शती ई० के अन्तिम चरण में कराया था, जब कि मर्करा-ताम्रपत्र-लेख के अनुसार तळवननगर के श्रीविजयजिनालय को बदणेगुप्पे ग्राम का दान शक सं० ३८८ (४६६ ई०) में किया गया था। और इसे असत्य सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

इसके अतिरिक्त ४६६ ई० के मर्करा-ताम्रपत्रलेख में उन्हीं कोङ्गणिमहाधिराज अविनीत तथा चन्दणन्दिभटार के नाम हैं, जिनके नाम ४२५ ई० के नोणमंगल के ताम्रपत्रलेख में हैं। इससे मर्करा ताम्रपत्रलेख का शक सं० ३८८ (४६६ ई०) वास्तविक सिद्ध होता है।

इन हेतुओं से सिद्ध है कि मर्करा-ताम्रपत्रोल्लिखित श्रीविजयजिनालय सेनापति श्रीविजय द्वारा मान्यनगर में बनवाये गये जिनालय से भिन्न है। स्थानभेद और कालभेद होते हुए भी केवल 'श्रीविजय' इस नामसाम्य के कारण उसे श्रीविजय द्वारा मान्यनगर में निर्मापित जिनालय का उल्लेख मान लेना मर्करा-ताम्रपत्रलेख के साथ एक दूसरी जालसाजी करना है।

किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में यह नहीं कहा गया है कि मर्करा-ताम्रपत्रलेख में 'श्रीविजयजिनालय' के नाम से सेनापति श्रीविजय द्वारा मान्यनगर में बनवाये गये

---

१०३. "स मान्यनगरे श्रीमान् श्रीविजयोऽकार (य) च्छुभम्। जिनेन्द्रभवनं तुङ्गं निर्म्मलं स्व-महस्-समम्॥ --- श्रीमारसिंहस्यानुज्ञया श्रीविजयो महानुभावः किषु-वेक्कूर-ग्राममादाय मान्यपुर-विनिर्म्मिताय भगवदर्हदायतनाय अदादिति।" जै.शि.सं./ मा.च./ भा.२/ मण्णे, ले.क्र. १२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जिनालय का उल्लेख है। हाँ, श्री सालेतोरे ने ऐसी अटकल लगायी है, जो डॉ० गुलाबचन्द्र जी चौधरी के निम्नलिखित वक्तव्य से सूचित होती है—

"इस संग्रह (जैन शिलालेख संग्रह / भाग १,२,३) के बाहर के एक जैन लेख (मै. आ. रि.१९२१, पृष्ठ ३१) से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट कम्भ ने सन् ८०७ में अपने पुत्र की प्रार्थना पर तळवनपुर के श्रीविजयजिनालय के लिए कोण्डकुन्दान्वय के कुमारनन्दिभटार के प्रशिष्य एवं एलवाचार्य के शिष्य वर्धमानगुरु को बदणेगुप्पे ग्राम दान में दिया।[१०४] यह श्रीविजयजिनालय बहुतकर जिनभक्त महासामन्त श्रीविजय द्वारा ही निर्मापित हुआ था (सालेतोरे : 'मेडीवल जैनिज्म', पृ.३८)।"[१०५]

यहाँ 'बहुतकर' शब्द से स्पष्ट है कि उक्त ग्रन्थलेखक ने 'श्रीविजय' शब्द के साम्य से ही यह अटकल लगायी है कि तळवननगर का श्रीविजयजिनालय श्रीविजय द्वारा बनवाया गया था। यह अटकल सर्वथा अयुक्तियुक्त है, यह उपर्युक्त हेतुओं से सिद्ध है।

यहाँ एक विशेषता द्रष्टव्य है। तळवननगर के श्रीविजयजिनालय को बदणेगुप्पे ग्राम दो बार दान में दिया गया। पहली बार मर्करा-ताम्रपत्रलेख के अनुसार शक सं० ३८८ (४६६ ई०) में और दूसरी बार ८०७ ई० में। पहली बार कदम्बवंशी महाराज अविनीत के द्वारा दिया गया, दूसरी बार राष्ट्रकूटवंशी राजा कम्भ के द्वारा। पहली बार चन्दणन्दी भटार को सौंपा गया, दूसरी बार कुमारनन्दी भटार के प्रशिष्य वर्धमानगुरु को। अब प्रश्न उठता है कि एक ही गाँव, एक ही जिनालय को दो बार कैसे दान किया जा सकता है? यह संभव है। ४६६ ई० और ८०७ ई० में ३४१ वर्ष का अन्तर है। इस अन्तराल में अनेक बार सत्तापरिवर्तन हुए। किसी समय किसी जैनधर्म-विरोधी राजा के हाथ में सत्ता आयी होगी और जिनालयों के लिए दान में दिये गाँव पुनः राजसात् हो गये होंगे। इसी कारण शक सं० ३८८ में तळवननगर के श्री विजयजिनालय को दिया गया बदणेगुप्पे गाँव राजसात् हो गया होगा और उसी अवस्था में राष्ट्रकूटनरेश कम्भ के हाथ में आया होगा। तब उसके पुत्र के प्रार्थना करने पर उसने पुनः उसी जिनालय को दान कर दिया होगा।

इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि राष्ट्रकूट राजवंश में तळवननगर के श्रीविजयजिनालय को बदणेगुप्पे गाँव का दूसरी बार दान सन् ८०७ में राजा कम्भ के द्वारा किया गया था, न कि ई० सन् ९३७ से ९६८ के बीच अकालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ-

१०४. यह लेख भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित जैन शिलालेख संग्रह, भाग ४ में संगृहीत है, जिसका क्रमांक ५४ है।

१०५. जैन शिलालेख संग्रह / माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला / भा.३ / प्रस्ता. / पृ.४९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उपाधिधारी कृष्ण तृतीय के मन्त्री द्वारा। क्योंकि जब राष्ट्रकूटवंश के एक राजा ने उस गाँव का दान कर दिया, तब उसी वंश के राजाओं द्वारा उसके छीने जाने और पुनः दान किये जाने की संभावना नहीं रहती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मर्करा-ताम्रपत्र में उल्लिखित राजा अविनीत ने अपने ही मन्त्री को बदणेगुप्पे गाँव प्रदान किया था, जिसे उसने तळवननगर के श्रीविजयजिनालय को दान कर दिया। अकालवर्ष-पृथुवीवल्लभ कृष्ण तृतीय के काल में निश्चित ही मर्करा-ताम्रपत्र-लेख में अविनीत के मन्त्री के नाम के स्थान में 'अकालवर्ष-पृथुवीवल्लभ मन्त्री' उत्कीर्ण करवा दिया गया और उससे सम्बन्धित अन्य वृत्तान्त जोड़ दिया गया। अतः मर्करा-ताम्रपत्र में केवल इतना ही अंश जाली है, शेष अंश जाली नहीं है। अर्थात् राजा अविनीत अथवा उसके मन्त्री के द्वारा शक सं० ३८८ में श्रीविजयजिनालय के लिए कोण्डकुन्दान्वय के चन्दणन्दिभटार को 'बदणेगुप्पे' नामक ग्राम दान किये जाने का वृत्तान्त सत्य है। इस प्रकार मर्करा-ताम्रपत्रलेख के अनुसार कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल ४६६ ई० से बहुत पहले सिद्ध होता है।

ये साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाण भी इस बात के सबूत हैं कि आचार्य कुन्दकुन्द ईसा की प्रथम शताब्दी से पहले हुए थे। अतः **दि इण्डियन एण्टिक्वेरी** की नन्दिसंघीय पट्टावली में आचार्य कुन्दकुन्द का स्थितिकाल जो ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी बतलाया गया है, उसकी इन साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से पुष्टि होती है। इस प्रकार सभी प्रमाण इस निर्णय पर पहुँचाते हैं कि कुन्दकुन्द ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध और ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए थे।

१२

४७० ई. के पूर्व निर्ग्रन्थ-श्रमणसंघ के शास्त्रों का अस्तित्व

कदम्बवंशी शिवमृगेशवर्मा के ४७० ई० के देवगिरि शिलालेख से यह सिद्ध है कि सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का निषेध करनेवाले निर्ग्रन्थ-महाश्रमणसंघ का अस्तित्व ४७० ई० के पूर्व से था। अतः यह भी निश्चित है कि उक्त संघ के इन सिद्धान्तों का युक्तिसंगतरूप से प्रतिपादन करनेवाले एवं दिगम्बर श्रमणों, श्रावकों और आर्यिकाओं के आचार का बोध करानेवाले, साथ ही आत्मादि द्रव्यों और मोक्षमार्ग के सर्वज्ञोपदिष्ट स्वरूप के विवेचक तथा कर्मसिद्धान्त के प्ररूपक शास्त्र भी उस समय विद्यमान होंगे। कर्मसिद्धान्त के प्ररूपक प्राचीनतम शास्त्र **कसायपाहुड** और **षट्खण्डागम** हैं, किन्तु द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और अध्यात्म का निरूपण करने वाले सबसे प्राचीन उपलब्ध शास्त्र आचार्य कुन्दकुन्द के ही हैं। मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों का निरूपण सर्वप्रथम कुन्दकुन्द के **प्रवचनसार** में ही हुआ है। **मूलाचार** में भी अट्ठाईस मूलगुणों

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का वर्णन है, पर उसकी रचना कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के आधार पर हुई है। इसका सप्रमाण प्रतिपादन 'मूलाचार' के अध्यायै में द्रष्टव्य है। सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति की अस्वीकृति निर्ग्रन्थ-श्रमण-परम्परा का प्राण है। इनका युक्तिपूर्वक खण्डन सर्वप्रथम कुन्दकुन्द के **सुत्तपाहुड** और **प्रवचनसार** में ही मिलता है। द्रव्यानुयोग का प्राचीनतम ग्रन्थ भी कुन्दकुन्द का **पंचास्तिकाय** ही है। इससे इस बात को स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता कि ४७० ई० के पूर्व निर्ग्रन्थ-श्रमण-परम्परा के पास उसके साम्प्रदायिक स्वरूप को प्रकट करनेवाले प्राचीनतम ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसारादि ही थे। यह तथ्य कुन्दकुन्द की प्राचीनता की पुष्टि करता है।

१३
विरोधीमतों का निरसन

अनेक विद्वानों ने उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया और सन्दिग्ध संकेतों के आधार पर कुन्दकुन्द के समय का आकलन करने की चेष्टा की है। जिससे अनेक परस्पर विरोधी मतों का प्रादुर्भाव हुआ है। **डॉ० के० बी० पाठक** ने टीकाकार आचार्य जयसेन के इस कथन के आधार पर कि कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय की रचना शिवकुमार महाराज के प्रतिबोध के लिए की थी, उनका समय विक्रम की छठी शताब्दी (४७० ई० के आसपास) आकलित किया है। **मुनि कल्याणविजय जी** ने भी डॉ० पाठक के उक्त कथन के आधार पर तथा कुन्दकुन्द के ग्रंथों में प्रयुक्त कुछ शब्दों के आधार पर यही समय निर्धारित किया है। **पं० नाथूराम जी प्रेमी** ने भी नियमसार में उल्लिखित 'लोकविभाग' शब्द को आधार बनाकर लगभग उपर्युक्त समय ही स्वीकार किया है।[१०६] **आचार्य श्री हस्तीमल जी** हरिवंशपुराण में उल्लिखित पट्टावली को प्रामाणिक मानकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कुन्दकुन्द वीरनिर्वाण सं० १००० (४७३ ई०) के आसपास हुए हैं, जबकि **डॉ० हार्नले** ने नन्दिसंघ की पट्टावलियों के आधार पर कुन्दकुन्द को ई० पू० ५२ से ई० ४४ तक विद्यमान माना है। **प्रो० ए० चक्रवर्ती** ने भी उनका अनुसरण किया है। कुन्दकुन्द ने श्रुतकेवली भद्रबाहु को अपना गमक गुरु कहा है, अत: **आचार्यश्री ज्ञानसागर जी** उन्हें श्रुतकेवली भद्रबाहु का ही सम-कालीन मानने के पक्ष में हैं, जब कि **पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार** ने उन्हें भद्रबाहु द्वितीय मानकर यह निर्णय किया है कि कुन्दकुन्द ई० सन् ८१ से १६५ के बीच स्थित थे।

इन परस्परविरोधी मतों के हेतुवाद की हेत्वाभासता का प्रदर्शन करते हुए उत्तर प्रकरणों में इनका निरसन किया जा रहा है।

---

१०६. देखिए, 'श्रमण भगवान् महावीर'/ पादटिप्पणी / पृ.३०१-३०६।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण

मुनि कल्याणविजय जी के मत का निरसन

श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शती का विद्वान् सिद्ध क रने का प्रयत्न किया है। इसके पक्ष में उन्होंने अपने ग्रन्थ **श्रमण भगवान् महावीर** में पृष्ठ ३०२ से ३०६ तक अनेक हेतु प्रस्तुत किये हैं। उनका वर्णन और निरसन नीचे किया जा रहा है।

१

कदम्बवंशी शिवमृगेश के लिए पंचास्तिकाय की रचना

मुनि जी का कथन है—''कुन्दकुन्दाचार्यकृत पञ्चास्तिकाय की टीका में जयसेनाचार्य लिखते हैं कि यह ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य ने शिवकुमार महाराज के प्रतिबोध के लिए रचा था। डॉ० पाठक के विचार से यह शिवकुमार ही कदम्बवंशी शिवमृगेश थे, जो सम्भवतः विक्रम की छठी शताब्दी के व्यक्ति थे। अतएव इनके समकालीन कुन्दकुन्द भी छठी सदी के ही व्यक्ति हो सकते हैं।'' (श्र.भ.म./पा.टि./पृ.३०२)।

निरसन

जयसेनाचार्य-वर्णित शिवकुमार राजा नहीं थे

१. इस हेतु का खण्डन सर्वप्रथम मुनि जी के ही वचनों से हो जाता है। उन्होंने कुन्दकुन्द को दिगम्बरमत का प्रवर्तक माना है। और श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा के देवगिरि-ताम्रपत्रलेख (ई० सन् ४७०-४९०)[१०७] में कहा गया है कि उसने जिनमन्दिर, **श्वेतपट-महाश्रमणसंघ** एवं **निर्ग्रन्थ-महाश्रमणसंघ** को कालवङ्ग नामक ग्राम दान में दिया था। और मृगेशवर्मा के हल्सी-ताम्रपत्रलेख (४७०-४९० ई०)[१०७] में उल्लेख है कि उसने जिनालय का निर्माण कराकर **यापनीयों, निर्ग्रन्थों** और **कूर्चकों** को भूमिदान किया था।[१०८] इससे सिद्ध होता है कि **दिगम्बर-परम्परा** (निर्ग्रन्थ-महाश्रमणसंघ) श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा के बहुत पहले से चली आ रही थी। अतः यदि मुनि जी के अनुसार कुन्दकुन्द को उसका प्रवर्तक माना जाय, तो वे श्रीविजय-शिवमृगेश वर्मा से अर्थात्

---

१०७. जैन शिलालेख संग्रह/माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला/भाग ३/प्रस्तावना : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी/पृ.२३।

१०८. उक्त ताम्रपत्रलेखों का मूलपाठांश अध्याय २/प्रकरण ६/शीर्षक २ में द्रष्टव्य है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

विक्रम की छठी शताब्दी से काफी पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते हैं। फलस्वरूप मुनि जी को या तो कुन्दकुन्द के दिगम्बरमत-प्रवर्तक होने की मान्यता छोड़नी होगी या उन्हें विक्रम की छठी शताब्दी से काफी पूर्ववर्ती स्वीकार करना होगा। किन्तु इनमें से कोई भी विकल्प चुनने पर वे दिगम्बरपरम्परा को अर्वाचीन सिद्ध नहीं कर सकेंगे, क्योंकि कुन्दकुन्द के दिगम्बरमत-प्रवर्तक होने की मान्यता छोड़ने पर यह सिद्ध होगा कि वह तीर्थंकरों द्वारा प्रवर्तित है। और कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शताब्दी से पूर्ववर्ती स्वीकार करने पर उन सारे हेतुओं पर पानी फिर जायेगा, जिनके आधार पर मुनि जी ने कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शती का माना है और तब उनके पास कुन्दकुन्द को ईसा-पूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी का सिद्ध करनेवाले हेतुओं को अमान्य करने के लिए और कोई हेतु शेष नहीं रहेगा। क्योंकि **दि इण्डियन एण्टिक्वेरी** में उद्धृत नन्दिसंघीय पट्टावली एवं अन्य प्रमाणों से कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी के सिद्ध होते हैं, उसे ही मिथ्या सिद्ध करने के लिए मुनि जी ने उक्त प्रकार के असंगत हेतुओं का मायाजाल बिछाया है। किन्तु श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा के शिलालेख में निर्ग्रन्थ-महाश्रमण-संघ को दान दिये जाने का उल्लेख उस मायाजाल से माया का परदा हटा देता है और कुन्दकुन्द के ईसा-पूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में होने का सत्य सूर्य के समान प्रकाशित होने लगता है।

डॉक्टर के० बी० पाठक ने स्वीकार किया है कि श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा के अस्तित्वकाल से पहले ही जैन लोग निर्ग्रन्थ और श्वेतपट सम्प्रदायों में विभक्त हो गये थे।[१०९] अर्थात् कुन्दकुन्द दिगम्बर-सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं थे। किन्तु मुनि जी ने डॉ० पाठक के इस कथन की उपेक्षा कर शिवकुमार महाराज और राजा श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा को अभिन्न मानने के साथ-साथ कुन्दकुन्द को दिगम्बरपरम्परा का प्रवर्तक भी मान लिया है। इस कारण उनकी शिवमृगेश वर्मा के शिवकुमार महाराज होने की मान्यता असंगत अतएव मिथ्या हो गयी है।

१०९. डॉक्टर के.बी. पाठक "Indian Antiquary", Vol. XIV, January 1885 में प्रकाशित अपने लेख "An Old Kanarese Inscription At Tērdāl" में पृष्ठ 15 पर लिखते हैं—" Bālachandra, the commentator, who lived before Abhinava-Pampa, says, in his introductory remarks on the Prābṛitasāra, that Kuṇḍakuṇḍā-chārya was also, called Padmanandi and was the preceptor of Śivakumāra-mahārāja. I would identify this king with the Early Kadamba king Śri-vijaya-Śiva-Mṛigēsa-mahārāja. For, in his time, the Jainas had already been divided into the Nirgranthas and the Śvētapaṭas. And Kuṇḍakuṇḍa attacks the Śvētapaṭa sect when he says, in the Pravachanasāra, that women are allowed to wear clothes because they are incapable of attaining nirvāṇa– चित्ते चित्ता माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं।"

२. वैसे भी डॉ० पाठक ने जो शिवकुमार महाराज का श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा के साथ समीकरण किया है, वह प्रमाण-विरुद्ध है, क्योंकि पूर्व में दर्शाया जा चुका है कि राजा श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा के कुछ पहले (ई० सन् ४५०) अथवा उनके समय में हुए पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की गाथाएँ उद्धृत की हैं, इसलिए कुन्दकुन्द श्रीविजय-शिवमृगेशवर्मा से पूर्ववर्ती हैं। अतः वे श्रीविजय-शिवमृगेश के गुरु नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त विद्वानों ने कुछ अन्य विसंगतियों की ओर भी संकेत किया है। **पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार** लिखते हैं—"प्रथम तो जयसेनादि का यह लिखना ही कि 'कुन्दकुन्द ने शिवकुमार महाराज के सम्बोधनार्थ अथवा उनके निमित्त इस पंचास्तिकाय की रचना की' बहुत कुछ आधुनिक मत जान पड़ता है, मूल ग्रन्थ में उसका कोई उल्लेख नहीं और न श्रीअमृतचन्द्राचार्य-कृत प्राचीन टीका पर से उसका कोई समर्थन होता है। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने ग्रन्थ के अन्त में यह सूचित किया है कि उन्होंने इस **पंचास्तिकायसंग्रह** सूत्र को प्रवचनभक्ति से प्रेरित होकर मार्ग की प्रभावनार्थ रचा है। यथा—

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं॥ १७३॥

"इससे स्पष्ट है कि कुन्दकुन्द ने अपना यह ग्रन्थ किसी व्यक्तिविशेष के उद्देश्य से अथवा उसकी प्रेरणा को पाकर नहीं लिखा, बल्कि इसका खास उद्देश्य **मार्गप्रभावना** और निमित्तकारण **प्रवचनभक्ति** है। यदि कुन्दकुन्द ने शिवकुमार महाराज के सम्बोधनार्थ अथवा उनकी खास प्रेरणा से इस ग्रन्थ को लिखा होता, तो वे इस पद्य में या अन्यत्र कहीं उसका कुछ उल्लेख जरूर करते, जैसे कि **भट्टप्रभाकर** के निमित्त **परमात्मप्रकाश** की रचना करते हुए **योगीन्द्रदेव** ने जगह-जगह पर ग्रन्थ में उसका उल्लेख किया है। परन्तु यहाँ मूल ग्रन्थ में ऐसा कुछ भी नहीं, न प्राचीन टीका में ही उसका उल्लेख मिलता है और न कुन्दकुन्द के किसी दूसरे ग्रंथ से ही **शिवकुमार** का कोई पता चलता है। इसलिये यह ग्रंथ शिवकुमार महाराज के सम्बोधनार्थ रचा गया, ऐसा मानने के लिये मन सहसा तैयार नहीं होता। संभव है कि एक विद्वान् ने किसी किंवदन्ती के आधार पर उसका उल्लेख किया हो और फिर दूसरे ने भी उसकी नकल कर दी हो। इसके सिवाय, जयसेनाचार्य ने **प्रवचनसार** की टीका में **प्रथम प्रस्तावनावाक्य** के द्वारा **शिवकुमार** का जो निम्न प्रकार से उल्लेख किया है, उससे शिवकुमार महाराज की स्थिति और भी संदिग्ध हो जाती है—

"**अथ कश्चिदासन्नभव्यः शिवकुमारनामा स्वसंवित्तिसमुत्पन्न-परमानन्दैक-लक्षणसुखामृत-विपरीत-चतुर्गतिसंसारदुःखभयभीतः समुत्पन्नपरमभेदविज्ञानप्रकाशातिशयः समस्तदुर्नयैकान्तनिराकृतदुराग्रहः परित्यक्तसमस्तशत्रुमित्रादिपक्षपातेनात्यन्तमध्य-**

स्थो भूत्वा धर्मार्थकामेभ्यः सारभूतामत्यन्तात्महितामविनश्वरां पंचपरमेष्ठिप्रसादोत्पन्नां मुक्तिश्रियमुपादेयत्वेन स्वीकुर्वाणः, श्रीवर्द्धमानस्वामितीर्थकरपरमदेवप्रमुखान् भगवतः पंचपरमेष्ठिनो द्रव्य-भावनमस्काराभ्यां प्रणम्य परमचारित्रमाश्रयामीति प्रतिज्ञां करोति—

"इस प्रस्तावना के बाद मूल ग्रन्थ (प्रवचनसार) की मंगलादिविषयक पाँच गाथाएँ एक साथ दी हैं, जिनमें से पिछली दो गाथाएँ इस प्रकार हैं—

किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं॥ १/४॥

तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती॥ १/५॥

"इन गाथाओं में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने बतलाया है कि 'मैं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुओं' (पंचपरमेष्ठियों) को नमस्कार करके और उनके विशुद्ध दर्शनज्ञानरूपी प्रधान आश्रम को प्राप्त होकर (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान से सम्पन्न होकर) उस साम्यभाव (परम-वीतराग-चारित्र) का आश्रय लेता हूँ, अथवा उसका सम्पादन करता हूँ, जिससे निर्वाण की प्राप्ति होती है।' और इस प्रकार की प्रतिज्ञा द्वारा उन्होंने अपने ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय को सूचित किया है। अब इसके साथ टीकाकार की उक्त प्रस्तावना को देखिये, उसमें यही प्रतिज्ञा शिवकुमार से कराई गई है, और इस तरह शिवकुमार को मूलग्रंथ का कर्त्ता अथवा प्रकारान्तर से कुन्दकुन्द का ही नामान्तर सूचित किया है। **साथ ही शिवकुमार के जो विशेषण दिये हैं, वे एक राजा के विशेषण नहीं हो सकते, वे उन महामुनिराज के विशेषण हैं, जो सरागचारित्र से भी उपरत होकर वीतरागचरित्र की ओर प्रवृत्त होते हैं।** ऐसी हालत में पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि शिवकुमार महाराज की स्थिति कितनी संदिग्ध है।

"दूसरे, शिवकुमार का **शिवमृगेशवर्मा** के साथ जो समीकरण किया गया है, उसका कोई युक्तियुक्त कारण भी मालूम नहीं होता। उससे अच्छा समीकरण तो प्रोफेसर ए० चक्रवर्ती नायनार, एम० ए०, एल० टी०, का जान पड़ता है, जो कांची के प्राचीन पल्लवराजा **शिवस्कन्दवर्मा** के साथ किया गया है।[११०] क्योंकि **स्कन्द** कुमार का पर्याय-नाम है और एक दानपत्र में उसे **युवामहाराज** भी लिखा है, जो **कुमारमहाराज** का वाचक है, इसलिये अर्थ की दृष्टि से शिवकुमार और शिवस्कन्द दोनों एक जान पड़ते हैं। इसके सिवाय शिवस्कन्द का 'मयिदावोलु'-वाला दानपत्र, अन्तिम मंगल पद्य

---

११०. देखिए, पंचास्तिकायसार के अँगरेजी संस्करण की प्रो. ए. चक्रवर्ती द्वारा लिखित ऐतिहासिक प्रस्तावना (Historical Introduction) सन् १९२०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को छोड़ कर प्राकृतभाषा में लिखा हुआ है और उससे शिवस्कन्द की दरबारी भाषा का प्राकृत होना पाया जाता है, जो इस ग्रन्थ की रचना आदि के साथ शिवस्कन्द का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये ज्यादा अनुकूल जान पड़ती है। साथ ही, शिवस्कन्द का समय भी शिवमृगेश से कई शताब्दियों पहले का अनुमान किया गया है।[१११] इसलिये पाठक महाशय का उक्त समीकरण किसी तरह भी ठीक मालूम नहीं होता। जान पड़ता है उन्होंने इस समीकरण को लेकर ही दो ताम्रपत्रों में[११२] उल्लिखित हुए तोरणाचार्य को, कुन्दकुन्दान्वयी होने के कारण, केवल डेढ़सौ वर्ष पीछे का ही विद्वान् कल्पित किया है, अन्यथा, वैसी कल्पना के लिये दूसरा कोई भी आधार नहीं था। हम कितने ही विद्वानों के ऐसे उल्लेख देखते हैं, जिनमें उन्हें कुन्दकुन्दान्वयी सूचित किया है और वे कुन्दकुन्द से हजार वर्ष से भी पीछे के विद्वान् हुए हैं। उदाहरण के लिये शुभचन्द्राचार्य की पट्टावली को लीजिये, जिसमें **सकलकीर्ति भट्टारक** के गुरु **पद्मनन्दि** को कुन्दकुन्दाचार्य के बाद **तदन्वयधरणधुरीण** लिखा है और जो ईसा की प्रायः १५वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इसलिये उक्त ताम्रपत्रों के आधार पर तोरणाचार्य को शक सं० ६०० का और कुन्दकुन्द को उनसे १५० वर्ष पहले शक सं० ४५० का विद्वान् मान लेना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता और वह उक्त समीकरण की मिथ्या कल्पना पर ही अवलम्बित जान पड़ता है। ४५० से पहले का तो शक सं० ३८८ का लिखा हुआ मर्कराताम्रपत्र है, जिसमें कुन्दकुन्द का नाम है, गुणचंद्राचार्य को कुन्दकुन्द के वंश में होनेवाला प्रकट किया है और फिर ताम्रपत्र के समय तक उनकी पाँच पीढ़ियों का उल्लेख किया है।" (स्वामी समन्तभद्र / पृ.१६७-१७२)।

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी निम्नलिखित वक्तव्य में मुख्तार जी के कथन का समर्थन किया है—

"प्रो० ए० चक्रवर्ती ने भी डॉ० पाठक के उक्त मत को मान्य नहीं किया है। उनका कहना है कि एक तो कुन्दकुन्द के समय से कदम्बराज का समय बहुत

---

१११. "चक्रवर्ती महाशय ने कुन्दकुन्द का अस्तित्वसमय ईसा से कई वर्ष पहले से प्रारंभ करके, उन्हें ईसा की पहली शताब्दी के पूर्वार्ध का विद्वान् माना है और इसलिये उनके विचार से शिवस्कंद का समय ईसा की पहली शताब्दी होना चाहिये, परन्तु एक जगह पर उन्होंने ये शब्द भी दिये हैं—"It is quite possible therefore that this Śivaskanda of Conjeepuram or one of the predecessor of the Same name was the contemporary and deciple of Śri Kundakunda." (Historical Introduction p, XII, Pañcāstikāyasāra) लेखक।

११२. जैन-शिलालेख-संग्रह / माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला / भाग २ / मण्णे-लेख क्र.१२२ / शक सं.७१९ (७९७ ई.) तथा मण्णे-लेख क्र.१२३ / शक सं. ७२४ (८०२ ई.)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अर्वाचीन है। दूसरे, इस बात का समर्थन करने वाले प्रमाणों का अभाव है कि **कदम्ब** प्राकृत भाषा से परिचित थे, जिसमें कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थ रचे हैं। डॉ० पाठक के मत के विपरीत प्रो० चक्रवर्ती ने पल्लव राजवंश के **शिवस्कन्द** को **शिवकुमार** महाराज मानने पर जोर दिया है, क्योंकि **स्कन्द** और **कुमार** शब्द एकार्थवाची हैं, अतः शिवस्कन्द का अर्थ होता है शिवकुमार। शिवस्कन्द युवमहाराज भी कहे जाते थे और युवमहाराज तथा कुमारमहाराज एकार्थक हैं। अन्य परिस्थितियाँ भी इस एकरूपता की पोषक हैं। पल्लवों की राजधानी **कंजीपुरम्** थी। पल्लव **थोण्डमण्डलम्** पर शासन करते थे। यह प्रदेश विद्वानों की भूमि माना जाता है। इसकी राजधानी ने अनेक द्रविड़ विद्वानों को आकर्षित किया था। कंजीपुरम् के राजगण ज्ञान के संरक्षक थे। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों से लेकर आठवीं शताब्दी तक अर्थात् समन्तभद्र से लेकर अकलंक तक कंजीपुरम् के चारों ओर जैनधर्म का प्रचार होता रहा है। अतः यदि कंजीपुरम् के पल्लवराजा ईसा की प्रथम शताब्दी में जैनधर्म के संरक्षक थे या जैनधर्म को पालते थे, तो यह असम्भव नहीं है।

"इसके सिवाय मयीडवोलु-दानपत्र की भाषा प्राकृत है। यह दानपत्र कंजीपुरम् के शिवस्कन्द वर्मा के द्वारा जारी किया गया था। इसके प्रारंभ में **सिद्ध** शब्द का प्रयोग है तथा मथुरा के शिलालेखों से यह बहुत मिलता-जुलता है। ये बातें बतलाती हैं कि इसके दाता राजा का झुकाव जैनधर्म की ओर था। अन्य अनेक शिलालेखों आदि से यह स्पष्ट है कि पल्लव राजाओं के राज्य की भाषा प्राकृत थी। अतः प्रो० चक्रवर्ती ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कुन्दकुन्द ने जिस शिवकुमार महाराज के लिए प्राभृतत्रय लिखे थे, वह बहुत सम्भवतया पल्लववंश का शिवस्कन्द वर्मा है।" (जै.सा.इ/भा.२/पृ.११४-११५)।

'शिवकुमारमहाराज' नामक मुनि का उल्लेख

किन्तु आचार्य जयसेन द्वारा उल्लिखित शिवकुमार महाराज, न तो शिवमृगेशवर्मा हो सकते हैं, न शिवस्कन्दवर्मा, क्योंकि जयसेन ने उन्हें मुनि के रूप में चित्रित किया है, यह **पंचास्तिकाय की** तात्पर्यवृत्ति में आदि और अन्त में कहे गये उनके वचनों से स्पष्ट है। आदि **में वे** लिखते हैं—

"**श्रीमत्कुण्डकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्य-प्रतिपत्त्यर्थमथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्ति-कायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते**"(ता.वृ., पातनिका / पं.का./ गा.१)।

अनुवाद—"पद्मनन्दी आदि अपरनामोंवाले श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य-देव द्वारा अन्त-

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

स्तत्त्व और बाह्यतत्त्व का गौण-मुख्यरूप से प्रतिपादन करने के लिए अथवा शिवकुमार महाराज आदि संक्षेप-रुचिशिष्यों के प्रतिबोधनार्थ रचे गये पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्र में यथाक्रमेण अधिकारशुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थ का व्याख्यान किया जा रहा है।''

इसके बाद आचार्य जयसेन **पंचास्तिकाय** की अन्तिम गाथा (१७३) की तात्पर्यवृत्ति समाप्त होने के पश्चात् कहते हैं—

''अथ यतः पूर्वं संक्षेपरुचिशिष्यसम्बोधनार्थं पञ्चास्तिकायप्राभृतं कथितं ततो यदा काले शिक्षां गृह्णाति तदा शिष्यो भण्यते इति हेतोः शिष्यलक्षणकथनार्थं परमात्माराधक-पुरुषाणां दीक्षाशिक्षाव्यवस्थाभेदाः प्रतिपाद्यन्ते। दीक्षाशिक्षागण-पोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थभेदेन षट्काला भवन्ति। तद्यथा—यदा कोऽप्यासन्न-भव्यो भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमाचार्यं प्राप्यात्माराधनार्थं बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागं कृत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति स दीक्षाकालः। दीक्षानन्तरं निश्चयव्यवहार-रत्नत्रयस्य परमात्म-तत्त्वस्य च परिज्ञानार्थं तत्प्रतिपादकाध्यात्मशास्त्रेषु यदा शिक्षां गह्णाति स शिक्षाकालः।---''

अनुवाद—''पूर्व में कहा गया है कि संक्षेपरुचि-शिष्यों को शिक्षा देने के लिए पञ्चास्तिकायप्राभृत की रचना की गयी है, और **जिस काल में शिक्षार्थी शिक्षा ग्रहण करता है, उस काल में वह शिष्य कहलाता है,** अतः शिष्य का लक्षण बतलाने के लिए परमात्मा के आराधक पुरुषों की दीक्षा, शिक्षा आदि की व्यवस्था के भेद प्रतिपादित किये जा रहे हैं। दीक्षा, शिक्षा, गणपोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना और उत्तमार्थ के भेद से छह काल होते हैं। जैसे, जब कोई आसन्नभव्य भेदाभेदरत्नत्रययुक्त आचार्य के पास जाकर आत्मा की आराधना के लिए बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर जिनदीक्षा ग्रहण करता है, वह दीक्षाकाल है। **दीक्षा के अनन्तर निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय और परमात्मतत्त्व का ज्ञान करने के लिये उनके प्रतिपादक शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करता है, तब वह शिक्षाकाल होता है।''**

इन कथनों में आचार्य जयसेन ने **मुनिदीक्षा ग्रहण करने के बाद गुरु से शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करनेवाले को ही 'शिष्य' कहा है। अतः शिवकुमार महाराज आदि को 'शिष्य' कहने से सिद्ध है कि शिवकुमार महाराज और उनके साथी 'मुनि' थे।**

इसके अतिरिक्त प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति के आरंभ में (पंचगाथात्मक मंगलाचरण की पातनिका में) शिवकुमार को परमचारित्र (वीतरागचरित्र) ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करते हुए वर्णित किया गया है। उन वचनों को पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अपने पूर्वोल्लिखित वक्तव्य में उद्धृत किया है। उनसे भी सिद्ध होता है कि

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शिवकुमारमहाराज मुनि थे। मुख्तार जी ने भी कहा है कि आचार्य जयसेन ने उक्त पातनिका में "शिवकुमार को जो विशेषण दिये हैं, वे एक राजा के विशेषण नहीं हो सकते। वे उन महामुनिराज के विशेषण हैं जो सरागचारित्र से भी उपरत होकर वीतरागचारित्र की ओर प्रवृत्त होते हैं।" (देखिये, मुख्तार जी का पूर्वोक्त वक्तव्य)।

प्रवचनसार के द्वितीय अधिकार की १०८ वीं गाथा की तथा तृतीय अधिकार की प्रथम गाथा की तात्पर्यवृत्ति में भी शिवकुमार महाराज को मुनिरूप में ही प्रदर्शित किया गया है।

दिगम्बरजैन-साहित्य में जैसे सम्राट् चन्द्रगुप्त और सेनापति चामुण्डराय के मुनिदीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है, वैसे कदम्बवंशी शिवमृगेशवर्मा या पल्लववंशी शिवस्कन्दवर्मा के जिनदीक्षा ग्रहण करने की कहीं भी चर्चा नहीं मिलती। इसलिए यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उक्त महाराजाओं में से ही कोई जिनदीक्षा ग्रहण कर कुन्दकुन्द का शिष्य बन गया था। आचार्य जयसेन के **'कश्चिदासन्नभव्यः शिवकुमारनामा'** (ता.वृ./पातनिका/प्र.सा.१/१-५)अर्थात् **'कोई शिवकुमार नाम का आसन्नभव्य'** इन शब्दों से ध्वनित होता है कि शिवकुमार कोई अप्रसिद्ध पुरुष थे। उनके साथा जुड़ा 'महाराज' शब्द कोई उपाधि नहीं थी, अपितु नाम का ही अंश था, जैसे **कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा** के कर्त्ता **स्वामिकुमार** के साथ जुड़ा **स्वामी** शब्द। मुनि दीक्षा ग्रहण करने के बाद 'राजपद' सूचक उपाधि का प्रयोग वीतरागता सूचक मुनिपद के अनुकूल नहीं है। आचार्य जयसेन ने भी **'शिवकुमारमहाराजनामा प्रतिज्ञां करोति'** (प्र.सा./ता.वृ./३/१) इस प्रयोग द्वारा **महाराज** शब्द को नाम का ही अंश सूचित किया है। यदि 'महाराज' उपाधि होती तो **'शिवकुमारनामा महाराजः'** ऐसा प्रयोग किया जाता। निष्कर्ष यह कि **शिवकुमार** नाम न तो राजा शिवमृगेशवर्मा का नामान्तर है, न ही शिवस्कन्दवर्मा का, अपितु किसी अराजवंशीय पुरुष का नाम है। यह अवश्य है कि **'शिवकुमारमहाराजादि-संक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थम्'** इस प्रयोग से यह प्रकट होता है कि 'शिवकुमार' कुन्दकुन्द के शिष्यों में प्रमुख थे। इस प्रमुखता के कारण ही संभवतः वे कुन्दकुन्द के शिष्य के रूप में प्रसिद्ध हुए और आचार्य जयसेन को किसी पारम्परिक स्रोत या अनुश्रुति से इसकी जानकारी प्राप्त हुई। उसी के आधार पर उन्होंने अपनी तात्पर्यवृत्ति में इसका उल्लेख किया है।

इसलिए जिन शिवकुमार महाराज का काल स्वयं अज्ञात है, उनके नाम के आधार पर कुन्दकुन्द के काल का निर्णय करना अन्धकार में गन्तव्य ढूँढ़ने के समान है।

२

नियमसार में वि. सं. ५१२ में रचित 'लोकविभाग' का उल्लेख

मुनि जी लिखते हैं—"प्रसिद्ध दिगम्बर जैन विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी ने नियमसार की एक गाथा खोज निकाली है, जिसमें आचार्य कुन्दकुन्द ने **लोकविभाग** परमागम का उल्लेख किया है।[११३] यह 'लोकविभाग' ग्रन्थ संभवतः **सर्वनन्दी आचार्य** की कृति है, जो कि वि० सं० ५१२ में रची गयी थी। इससे भी कुन्दकुन्द छठी सदी के ग्रन्थकार प्रतीत होते हैं।" (श्र.भ.म. / पा.टि. / पृ.३०३)।

निरसन

'लोकविभागों में' यह पद लोकानुयोग-विषयक प्रकरणसमूह का वाचक, स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम नहीं

इस हेतु का निरसन पं० जुगलकिशोर मुख्तार ने किया है। वे **जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश** नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—"नियमसार की उस गाथा में प्रयुक्त हुए **लोयविभागेसु** पद का अभिप्राय सर्वनन्दी के उक्त **लोकविभाग** से नहीं है और न हो सकता है, बल्कि बहुवचनान्त पद होने से वह 'लोकविभाग' नाम के किसी एक ग्रन्थविशेष का भी वाचक नहीं है। वह तो लोकविभाग-विषयक-कथनवाले अनेक ग्रन्थों अथवा प्रकरणों के संकेत को लिए हुए जान पड़ता है और उसमें खुद कुन्दकुन्द के **लोयपाहुड**, **संठाणपाहुड** जैसे ग्रन्थ तथा दूसरे **लोकानुयोग** अथवा लोकालोक के विभाग को लिए हुए करणानुयोग-सम्बन्धी ग्रन्थ भी शामिल किये जा सकते हैं। और इसलिए **लोयविभागेसु** इस पद का जो अर्थ कई शताब्दियों-पीछे के टीकाकार **पद्मप्रभ** ने **लोकविभागाभिधानपरमागमे** ऐसा एकवचनान्त किया है, वह ठीक नहीं है।" (जै.सा.इ.वि.प्र. / पृ.६०१)।

इस पर पं० नाथूराम जी प्रेमी का कथन है कि **लोयविभागेसु** में "बहुवचन का प्रयोग इसलिए भी इष्ट हो सकता है कि लोकविभाग के अनेक विभागों या अध्यायों में उक्त भेद देखने चाहिए।" इसका निरसन करते हुए मुख्तार जी लिखते हैं—"ग्रन्थकार कुन्दकुन्दाचार्य का यदि ऐसा अभिप्राय होता तो वे **लोयविभाग-विभागेसु** ऐसा पद रखते, तभी उक्त आशय घटित हो सकता था। परन्तु ऐसा नहीं है, और इसलिए प्रस्तुत पद के **विभागेसु** पद का आशय यदि ग्रन्थ के विभागों या अध्यायों का लिया जाता है, तो ग्रन्थ का नाम **लोक** रह जाता है, **लोकविभाग** नहीं और उससे प्रेमी

११३. चउदहभेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं॥ १७॥ नियमसार।

जी की सारी युक्ति ही लौट जाती है, जो **लोकविभाग** ग्रन्थ के उल्लेख को मानकर की गई है।''

इसके उत्तर में प्रेमी जी कहते हैं—''**लोयविभागेसु णादव्वं**' पाठ पर जो यह आपत्ति की गई है कि वह बहुवचनान्त पद है, इसलिये किसी लोकविभाग-नामक एक ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता, तो इसका एक समाधान यह हो सकता है कि पाठ को **लोयविभागे सुणादव्वं** इस प्रकार पढ़ना चाहिये। 'सु' को 'णादव्वं' के साथ मिला देने से एकवचनान्त 'लोयविभागे' ही रह जायगा और अगली क्रिया 'सुणादव्वं' (सुज्ञातव्यं) हो जायगी। पद्मप्रभ ने भी शायद इसीलिए उसका अर्थ **लोक-विभागाभिधानपरमागमे** किया है।'' (जै.सा.इ.वि.प्र./पृ.६०५)।

मुख्तार जी इस समाधान का निरसन करते हुए लिखते हैं—''इस पर मैं इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि प्रथम तो मूल का पाठ जब **लोयविभागेसु णादव्वं** इस रूप में स्पष्ट मिल रहा है और टीका में उसकी संस्कृत छाया जो **लोकविभागेसु ज्ञातव्यं** दी है उससे वह पुष्ट हो रहा है तथा टीकाकार पद्मप्रभ ने क्रियापद के साथ 'सु' का 'सम्यक्' आदि कोई अर्थ व्यक्त भी नहीं किया, मात्र विशेषणरहित **द्रष्टव्यः** पद के द्वारा उसका अर्थ व्यक्त किया है, तब मूल के पाठ की, अपने किसी प्रयोजन के लिए अन्यथा कल्पना करना ठीक नहीं है।'' (जै.सा.इ.वि.प्र./पृ. ६०५-६०६)।

मुख्तार जी ने अपने मत के समर्थन में दूसरा तर्क यह दिया है कि ''उपलब्ध 'लोकविभाग' में, जो कि ('उक्तं च' वाक्यों को छोड़कर) सर्वनन्दी के प्राकृत लोकविभाग का ही अनुवादित संस्कृतरूप है, तिर्यंचों के उन चौदह भेदों के विस्तारकथन का कोई पता भी नहीं, जिसका उल्लेख नियमसार की उक्त १७वीं गाथा में किया गया है।'' (जै. सा.इ.वि.प्र./पृ.६०१)। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि नियमसार की उपर्युक्त गाथा में सर्वनन्दीकृत 'लोकविभाग' का उल्लेख नहीं है।

पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री भी ऐसा ही मानते हैं। उन्होंने लिखा है—''वर्तमान 'लोकविभाग' में अन्यगति के जीवों का तो थोड़ा बहुत वर्णन प्रसङ्गवश किया भी गया है, किन्तु तिर्यंचों के चौदह भेदों का तो वहाँ नाम भी दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः यदि नियमसार में लोकविभाग नाम के परमागम का उल्लेख है, तो वह कम से कम वह 'लोकविभाग' तो नहीं है, जिसकी भाषा का परिवर्तन करके संस्कृत 'लोकविभाग' की रचना की गई है और जो शक सं. ३८० में सर्वनन्दी के द्वारा रचा गया था।[११४] (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ.५८)। अतः इस आधार पर यह सिद्ध

११४.''वर्तमान में जो संस्कृत लोकविभाग पाया जाता है, उसके अन्त में लिखा है कि पहले सर्वनन्दी आचार्य ने शक सं. ३८० में शास्त्र (लोकविभाग) लिखा था, उसी की भाषा को परिवर्तित करके यह संस्कृत लोकविभाग रचा गया है।'' (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ.५८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

नहीं होता कि कुन्दकुन्द शक सं० ३८० (विक्रम सं० ५१५) के बाद हुए थे। पूर्वोक्त कई प्रमाणों से सिद्ध है कि वे ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी के आचार्य थे।

डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने भी पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार के मत का समर्थन किया है। वे लिखते हैं—

"Pt. Premi (Jaina Jagat VIII, IV) inferred from this that Kundakunda is reffering to the Prakrit Lokavibhāga of Sarvanadi composed in Śaka 380, it is not available, but the Sanskrit version of it by Siṃhasūri is available, and that, therefore, Kundakunda is later than 458 A.D. Pt. permi's Position is logically weak, nor is it guaranteed by the facts as already shown by Pt. Jugalkishore (Jain Jagat VIII, IX). The use 'loyavibhāgesu' in plural does not indicate that it is the name of any individual work, and much reliance, so for as historical and chronological purpuse is concerned, can not be placed on the interpretation of the commentator, who comes long after Kundakunda. The word might refer to a collection of works belonging to Lokānuyoga group of Jaina Literature. The interpretation of the commentator should not be attributed to Kundakunda. When the Merkara copper plates of Śaka 388 refer to Kundakundānvaya and mention half a dozen teachers belonging to that lineage, it is impossible that Kundakunda can be put after Śaka 380, and that he might be reffering to the work of Sarvanandi." (Pravacansāra, Introduction, pp.21-22, F.N.2.)

३

समयसार में तृ. श. ई. के विष्णुकर्तृत्ववाद का उल्लेख

समयसार की एक गाथा में यह कहा गया है कि लौकिक जन मानते हैं कि देव, नारक, तिर्यंच और मनुष्यों का कर्त्ता विष्णु है।[११५] मुनि कल्याणविजय जी का कथन है कि "विष्णु को कर्त्तापुरुष माननेवाले वैष्णवसम्प्रदाय की उत्पत्ति विष्णुस्वामी से ई० सन् की तीसरी शताब्दी में हुई थी। उनके सिद्धान्त ने खासा समय बीतने के बाद ही लोकसिद्धान्त का रूप धारण किया होगा, यह निश्चित है। इससे कहना पड़ेगा कि कुन्दकुन्द चौथी सदी के पहले के नहीं हो सकते, **भावप्राभृत** की १४९वीं गाथा में कुन्दकुन्द ने 'शिव', 'परमेष्ठी', 'सर्वज्ञ','विष्णु,' 'चतुर्मुख' आदि कतिपय पौराणिक देवों के नामों का उल्लेख किया है। इससे भी जाना जाता है कि वे पौराणिक काल में हुए थे, पहले नहीं।" (श्र.भ.म./पा.टि./पृ.३०३)।

---

११५. लोयस्स कुणइ विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणं पि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये॥ ३२१॥ समयसार।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निरसन

विष्णुकर्तृत्ववाद ऋग्वेदकालीन

मुनि जी का यह तर्क समीचीन नहीं है। लोक के निर्माता के रूप में विष्णु का वर्णन **ऋग्वेद** के एक विष्णुसूक्त में किया गया है। उसकी निम्नलिखित ऋचाएँ द्रष्टव्य हैं—

१

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥

ऋग्वेद १/१५४/१।

इसका भाष्य करते हुए आचार्य **सायण** लिखते हैं—"हे नरा विष्णोर्व्यापनशीलस्य देवस्य वीर्याणि वीरकर्माणि नुकमतिशीघ्रं प्रवोचं प्रब्रवीमि। --- यो विष्णुः पार्थिवानि पृथिवीसम्बन्धीनि रजांसि क्षित्यादिलोकत्रयाभिमानीन्यग्निवाय्वादित्यरूपाणि रजांसि विममे विशेषेण निर्ममे। अत्र त्रयो लोका अपि पृथिवीशब्दवाच्याः तथा च मन्त्रान्तरम् 'यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः' (ऋक्संहिता १/१०८/९) इति।--- किञ्च यश्च **विष्णुरुत्तरमुद्गततरमतिविस्तीर्णं** सधस्थं सहस्थानं लोकत्रयाश्रयभूतमन्तरिक्षमस्कभायत् तेषामाधारत्वेन स्तम्भितवान् निर्मितवानित्यर्थः। अनेनान्तरिक्षाश्रितं **लोकत्रयमपि सृष्टवानित्युक्तं** भवति।"

इस प्रकार इस ऋचा में कहा गया है कि **विष्णु ने लोकत्रय का निर्माण किया।**

भाष्यकार **महीधर** ने भी ऐसा ही भाष्य किया है—"**यो विष्णुः पार्थिवानि रजांसि पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोकस्थानानि विममे निर्ममे।**" अर्थात् **विष्णु ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग इन तीन लोकों की रचना की।**

२

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममेत्रिभिरित् पदेभिः॥

ऋग्वेद १/१५४/३।

सायणभाष्य—"**यो विष्णुरिदं प्रसिद्धं दृश्यमानं दीर्घमतिविस्तृतं प्रयतं नियतं सधस्थं सहस्थानं लोकत्रयमेक इदेक एवाद्वितीयः सन् त्रिभिः पदेभिः पादैर्विममे विशेषेण निर्मितवान्।**"

इस ऋचा और उसके भाष्य में भी कहा गया है कि **विष्णु ने अकेले ही तीन कदम चलकर लोकत्रय का निर्माण किया।**

३

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥

ऋग्वेद / १ / १५४ / ४।

सायणभाष्य—"--- एवं **चतुर्दश लोकान् विश्वा भुवनानि** सर्वाण्यपि तत्रत्यानि भूतजातानि। --- पृथिव्यप्तेजोरूपधातुत्रयविशिष्टं यथा भवति तथा दाधार धृतवान्--- **उत्पादितवानित्यर्थः।**"

यहाँ बतलाया गया है कि **चतुर्दश लोकों को अर्थात् उनमें रहनेवाले समस्त प्राणियों को विष्णु ने उत्पन्न किया।**

४

उरुक्रमस्य सहिबन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥

ऋग्वेद / १ / १५४ / ५।

सायणभाष्य—"**विष्णोर्व्यापकस्य परमेश्वरस्य परम उत्कृष्टे निरतिशये केवलसुखात्मके पदे स्थाने मध्वो मधुरस्योत्सो निष्यन्दो वर्तते।**"

यहाँ **विष्णु** को **सर्वव्यापी परमेश्वर** विशेषण से विशिष्ट किया गया है।

इस प्रकार ऋग्वेद में विष्णु को सर्वव्यापी परमेश्वर, लोक का निर्माता एवं समस्त प्राणियों को जन्म देनेवाला कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि विष्णु के सृष्टिकर्तृत्व की अवधारणा बहुत प्राचीन है।

पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री भी लिखते हैं—"विष्णु देवता तो वैदिककालीन हैं, अतः वैष्णवसम्प्रदाय की उत्पत्ति से पहले विष्णु को कर्त्ता नहीं माना जाता था, इसमें क्या प्रमाण है? कर्तृत्ववाद की भावना बहुत प्राचीन है। इसी प्रकार शिव आदि भी पौराणिककाल के देवता नहीं है। **हिन्दतत्त्वज्ञान नो इतिहास** में लिखा है—

"आर्योना रुद्रनी अने द्राविडोना शिवनी भावनानुं सम्मेलन रामायण पहेला थयेलु जणाय छे। ई० स० पू० ५०० ना आरसामां हिन्दुओनी वैदिकधर्म तामीलदेशमां प्रवेश पाम्यो त्यारे विष्णु अने शिवसंबंधी भक्तिभावना क्रमशः संसार अने त्यागने पोषनारी दाखल थवा पामी। वन्ने प्रणालिका अवरोधी भाव थी टकी रही। परन्तु ज्यारे बौद्धीअ अने जैनोए ते वे देवोनी भावनाने डगावववा प्रयत्न कर्यां त्यारे प्रत्येक प्रणालिकाए पोतपोताना देवनी महत्ता बधारी अनुयायिओंमा विरोध जगव्यो।"

"इससे स्पष्ट है कि द्रविड़ देश में कुन्दकुन्द के पहले से ही शिव की उपासना होती थी। अतः यदि कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में विष्णु , शिव आदि देवताओं का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उल्लेख किया, तो उससे कुन्दकुन्द पौराणिककाल के कैसे हो सकते हैं? प्रत्युत उन्हें उसी समय का विद्वान् मानना चाहिए जिस समय तमिल में उक्त भावना प्रबल थी।'' (कसायपाहुड / भा.१ / प्रस्ता. / पा.टि. / पृ.५६-५७)।

वैदिकपरम्परा में भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्ण) विष्णु के अवतार माने गये हैं। ४०० से १०० ई० पू० में रचित **महाभारत** में उनसे सम्पूर्ण विश्व एवं समस्त सन्तति (प्राणियों) की उत्पत्ति बतलाई गई है।[११६] **इससे भी प्रमाणित होता है कि विष्णु ईसापूर्व काल से ही सृष्टि के कर्त्ता माने जाते रहे हैं।** अतः समयसार में उपर्युक्त लोकमत का उल्लेख होने से कुन्दकुन्द का ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में स्थित होना असिद्ध नहीं होता।

४

षट्प्राभृतों में परवर्ती चैत्यादि एवं शिथिलाचार का वर्णन

मुनि जी कहते हैं कि कुन्दकुन्द ने **बोधप्राभृत** (गाथा ६-८ और १०) में 'आयतन' 'चैत्यगृह' और 'प्रतिमा' की चर्चा की है, अतः वे 'चैत्यवास' काल के पहले के नहीं हो सकते। **भावप्राभृत** की १६२वीं गाथा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन किया है। ये विक्रम की पाँचवीं सदी के बाद में प्रचलित होने वाले विषय हैं। **लिंगप्राभृत** की गाथा ९, १०, १६ और २१वीं में साधुओं की आचारविषयक जिन शिथिलताओं की निन्दा की है, वे शिथिलताएँ विक्रमीय पाँचवीं सदी के बाद साधुओं में प्रविष्ट हुई थीं। इसी प्रकार **रयणसार** में साधुओं के द्वारा किये जानेवाले अनेक धर्मविरुद्ध कार्यों का वर्णन है, जो उन्हें विक्रम की छठी सदी से पूर्व का विद्वान् सिद्ध नहीं करते। (श्र.भ.म./पा.टि./पृ.३०३-३०६)।

निरसन

चैत्यगृह-प्रतिमादि ईसापूर्वकालीन, शिथिलाचार अनादि

इसके उत्तर में पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—''जिनालय और जिनबिम्ब के निर्माण की प्रथा चैत्यवास से सम्बन्ध नहीं रखती। 'चैत्यवास चला' इससे ही

११६. भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च॥ २५६॥
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः॥ २५७॥
असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः॥ २५८॥ महाभारत / आदिपर्व / प्रथम अध्याय।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

स्पष्ट है कि चैत्य पहले से ही होते आये हैं। यंत्र, तंत्र, मंत्र के कारण दान देने की प्रवृत्ति एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो किसी सम्प्रदाय के उद्भव से सम्बन्ध न रखकर पंचमकाल के मनुष्यों की नैसर्गिक रुचि को द्योतित करती है। अतः इनके आधार से भी कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शताब्दी का विद्वान् नहीं माना जा सकता। हाँ, **रयणसार** ग्रन्थ से जो कुछ उद्धरण दिये गये हैं, वे अवश्य विचारणीय हो सकते थे। किन्तु उसकी भाषा शैली आदि पर से प्रो० ए० एन० उपाध्ये ने अपनी **प्रवचनसार** की भूमिका में उसके कुन्दकुन्दकृत होने पर आपत्ति की है। ऐसा भी मालूम हुआ है कि **रयणसार** की उपलब्ध प्रतियों में भी बड़ी असमानता है। अतः जब तक **रयणसार** की कोई प्रामाणिक प्रति उपलब्ध न हो और उसकी कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थों के साथ एकरसता प्रमाणित न हो, तब तक उसके आधार पर कुन्दकुन्द को छठी शताब्दी का विद्वान् नहीं माना जा सकता।'' (कसायपाहुड / प्रस्ता. / पा.टि. / पृ.५७)।

पूर्वोक्त पट्टावलीय, अभिलेखीय एवं साहित्यिक प्रमाण कुन्दकुन्द को ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी का सिद्ध करते हैं, अतः उनके **बोधप्राभृत** आदि ग्रन्थों में चर्चित उपर्युक्त विषय निर्विवादरूप से उसी समय से सम्बन्ध रखते हैं। हम देख चुके हैं कि भगवान् महावीर के निरपवाद अचेलमार्ग में वस्त्रपात्रादि ग्रहण करने की शिथिलाचारी प्रवृत्तियाँ अन्तिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद से ही शुरू हो गई थीं और तभी से अस्तित्व में आये श्वेताम्बरसम्प्रदाय तथा पूर्ववर्ती दिगम्बर (निर्ग्रन्थ) सम्प्रदाय दोनों में शुद्धाचारी और शिथिलाचारी उभय प्रवृत्तियोंवाले साधुओं का अस्तित्व रहा है। शिथिलाचार जब एक बार शुरू हो गया, तो उसमें क्रमशः वृद्धि होती गई, जिसका चरमरूप चैत्यवासी और मठवासी साधुओं के रूप में प्रतिफलित हुआ। आचार्य कुन्दकुन्द ने शिथिलाचारी जैन साधुओं के **पार्श्वस्थ** आदि पाँच भेद बतलाये हैं और कहा है कि उनका अस्तित्व अनादिकालीन है। (देखिए अष्टम अध्याय का चतुर्थ प्रकरण)। इस प्रकार शिथिलाचार ईसापूर्व शताब्दियों से चला आ रहा था। कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में उसी का वर्णन किया है। अतः उक्त वर्णन से वे विक्रम की छठी शताब्दी के सिद्ध नहीं होते। कुन्दकुन्द के समय (ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी) में कुछ जैन मुनियों में कृषि-वाणिज्य आदि कर्म करने की प्रवृत्तियाँ प्रचलित हो चुकी थीं। इसका प्रमाण यही है कि उनका उल्लेख उस समय लिखे गये **लिंगप्राभृत** में मिलता है। अतः उक्त प्रवृत्तियों का विकास विक्रम की पाँचवीं शती के बाद मानकर कुन्दकुन्द का अस्तित्व उसी समय में मानना पूर्ववर्णित पट्टावलीय, साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों की अवहेलना करना है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५

मर्करा-ताम्रपत्र में विक्रम की ७वीं सदी के बाद प्रचलित 'भटार' शब्द का प्रयोग

मुनि जी ने लिखा है—"विक्रम की नवीं सदी के पहले किसी भी शिलालेख, ताम्रपत्र या ग्रन्थ में कुन्दकुन्दाचार्य का नामोल्लेख न होना भी यही सिद्ध करता है कि वे उतने प्राचीन व्यक्ति न थे, जितना कि अधिक दिगम्बर विद्वान् समझते हैं। यद्यपि मर्करा के एक ताम्रपत्र में, जो कि संवत् ३८८ का लिखा हुआ माना जाता है, कुन्दकुन्द का नामोल्लेख है, तथापि हमारी इस मान्यता में कुछ भी आपत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि उस ताम्रपत्र में उल्लिखित तमाम आचार्यों के नामों के पहले 'भटार' (भट्टारक) शब्द लिखा गया है। इससे सिद्ध है कि यह ताम्रपत्र भट्टारककाल में लिखा गया है, जो विक्रम की सातवीं सदी के बाद शुरू होता है। इस दशा में ताम्रपत्रवाला संवत् कोई अर्वाचीन संवत् होना चाहिए अथवा यह ताम्रपत्र ही जाली होना चाहिए।" (श्र.भ.म./पा.टि./पृ. ३०६)।

निरसन

आदरसूचक 'भटार' शब्द का प्रचलन प्राचीन

अष्टम अध्याय में सोदाहरण प्रतिपादित किया गया है कि दिगम्बरजैन साहित्य और शिलालेखों में **भटार** या **भट्टारक** शब्द तीन अर्थों को सूचित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है—१.आदर, २.विद्वत्तादिगुण तथा ३.अजिनोक्त सवस्त्र-साधुलिंगी दिगम्बर-जैन धर्मगुरु। मर्करा-ताम्रपत्रलेख में **भटार** शब्द आदर-सूचनार्थ प्रयुक्त हुआ है। और इसके रूपान्तर **परमभट्टारक** शब्द का प्रयोग ४३३ ई० (गुप्तकाल वर्ष ११३) के मथुरा-शिलालेख में गुप्तनरेश कुमारगुप्त के नाम के पूर्व भी किया गया है। यथा—"**परम-भट्टारक-माहाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्य** ---।" (जै.शि.सं./मा.च./भा.२/ले.क्र.९२)। इसलिए मुनि जी का यह कथन सर्वथा मिथ्या है कि 'भटार' या 'भट्टारक' शब्द के प्रयोग का प्रचलन विक्रम की सातवीं सदी के बाद भट्टारककाल में शुरू हुआ था। मर्करा-ताम्रपत्र में उत्कीर्ण संवत् ३८८ को इतिहासज्ञों ने शकसंवत् ही माना है, क्योंकि दक्षिण भारत में यही प्रचलित था। शक सं० ३८८ का समकालीन ईसवी सन् ४६६ है और आदर सूचित करने के लिए **भट्टारक** शब्द का प्रयोग कुमारगुप्त के समय ४३३ ई० में भी होता था। अतः मर्करा-ताम्रपत्र में **भटार** शब्द के प्रयोग से उसमें उल्लिखित संवत् के शकसंवत् होने में कोई बाधा नहीं आती। इसलिए

मुनि जी का उसे कोई अर्वाचीन संवत् मानना अथवा ताम्रपत्र को जाली कहना भी नितान्त असत्य सिद्ध होता है।

तथा मुनि जी का यह कथन भी सर्वथा मिथ्या है कि भट्टारककाल विक्रम की सातवीं सदी के बाद शुरू हुआ था। अष्टम अध्याय में अनेक प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया गया है कि भट्टारकपरम्परा का उदय १२वीं शताब्दी ई० में हुआ था। अतः मर्कराताम्रपत्र में कुन्दकुन्दान्वय का उल्लेख कुन्दकुन्द की प्राचीनता सिद्ध करनेवाला एक बलिष्ठ अभिलेखीय प्रमाण है। यह ताम्रपत्र तो जाली नहीं है, किन्तु हम देख रहे हैं कि मुनि जी के सारे हेतु शत-प्रतिशत जाली हैं।

६

कोई भी पट्टावली वीर नि. सं. के अनुसार रचित नहीं

स्व० पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने कसायपाहुड (भाग १) की प्रस्तावना (पृ.५७) में लिखा है कि "जिस प्रकार मुनि (कल्याणविजय) जी ने मर्करा के उक्त ताम्रपत्र को जाली कहने का अतिसाहस किया है, उसी प्रकार उन्होंने एक और भी अतिसाहस किया है। मुनि जी लिखते हैं—

"पट्टावलियों में कुन्दकुन्द से लोहाचार्य पर्यन्त के सात आचार्यों का पट्टकाल इस क्रम से मिलता है—

१. कुन्दकुन्दाचार्य	५१५-५१९
२. अहिबल्याचार्य	५२०-५६५
३. माघनन्द्याचार्य	५६६-५९३
४. धरसेनाचार्य	५९४-६१४
५. पुष्पदन्ताचार्य	६१५-६३३
६. भूतबल्याचार्य	६३४-६६३
७. लोहाचार्य	६६४-६८७

"पट्टावलीकार उक्त वर्षों को वीरनिर्वाणसम्बन्धी समझते हैं, परन्तु वास्तव में ये वर्ष विक्रमीय होने चाहिये, क्योंकि दिगम्बरपरम्परा में विक्रम की बारहवीं सदी तक बहुधा शक और विक्रम संवत् लिखने का ही प्रचार था। प्राचीन दिगम्बराचार्यों ने कहीं भी प्राचीन घटनाओं का उल्लेख वीरसंवत् के साथ किया हो, यह हमारे देखने में नहीं आया, तो फिर यह कैसे मान लिया जाय कि उक्त आचार्यों का समय

लिखने में उन्होंने वीरसंवत् का उपयोग किया होगा। जान पड़ता है कि सामान्यरूप से लिखे हुए विक्रमवर्षों को पिछले पट्टावली-लेखकों ने निर्वाणाब्द मानकर धोखा खाया है और इस भ्रमपूर्ण मान्यता को यथार्थ मानकर पिछले इतिहास-विचारक भी वास्तविक इतिहास को बिगाड़ बैठे हैं। (श्र.भ.म./पृ. ३४५-३४६)।" (कसायपाहुड/भा.१/प्रस्ता./पृ. ५७)।

और इस प्रकार मुनि जी ने वीरनिर्वाण-संवत् पर विक्रमसंवत् का आरोप कर कुन्दकुन्द को पट्टावलियों के आधार पर विक्रम की छठी शताब्दी में उत्पन्न सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं—

"श्रुतावतार के उपर्युक्त (श्र.भ.म./पृ.३४६ पर उल्लिखित) कथन से भी यही सिद्ध होता है कि अंगज्ञान की प्रवृत्ति जो वीर सं० ६८३ (विक्रम संवत् २१३) तक चली थी, उसके बाद अनेक आचार्यों के पीछे कुन्दकुन्द हुए थे। हमारे इस विवेचन से विचारकगण समझ सकेंगे कि कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम की छठी सदी के प्रथम चरण में स्वर्गवासी हुए थे और उनके बाद विक्रम की सातवीं सदी के मध्यभाग में दिगम्बरग्रन्थ पुस्तकों पर लिखकर व्यवस्थित किये गये थे।" (श्र.भ.म./पृ.३४६)।

निरसन

तिलोयपण्णत्ती आदि में वीरनिर्वाणानुसार ही कालगणना

इसका निरसन करते हुए पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—"मुनि जी त्रिलोकप्रज्ञप्ति को कुन्दकुन्द से प्राचीन मानते हैं, और त्रिलोकप्रज्ञप्ति में वीरनिर्वाण से बाद की जो कालगणना दी है, वह हम पहले लिख आये हैं। बाद के ग्रन्थकारों और पट्टावलीकारों ने भी उसी के आधार पर कालगणना दी है। ६८३ वर्ष की परम्परा भी वीरनिर्वाण-संवत् के आधार पर है। नन्दिसंघ की पट्टावली में भी जो कालगणना दी है, वह भी स्पष्टरूप में वीरनिर्वाण-संवत् के आधार पर दी गई है। मालूम होता है मुनि जी ने इनमें से कुछ भी नहीं देखा। यदि देखा होता तो उन्हें यह लिखने का साहस न होता कि "प्राचीन दिगम्बराचार्यों ने कहीं भी प्राचीन घटनाओं का उल्लेख वीरसंवत् के साथ किया हो, यह हमारे देखने में नहीं आया।" **आश्चर्य है कि मुनि जी जैसे इतिहासलेखक कुछ भी देखे बिना ही दूसरी परम्परा के सम्बन्ध में इस प्रकार की कल्पनाओं के आधार पर भ्रम फैलाने की चेष्टा करते हैं और स्वयं वास्तविक इतिहास को बिगाड़कर पिछले इतिहास-विचारकों पर वास्तविक इतिहास को बिगाड़ने का लांछन लगाते हैं। किमाश्चर्यमतः परम्!**" (कसायपाहुड/भा.१/प्रस्ता./पा.टि./पृ.५८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस तरह आचार्य कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शती का सिद्ध करने के लिए मुनि श्री कल्याणविजय जी द्वारा बतलाया गया प्रत्येक हेतु मिथ्या सिद्ध हो जाता है और यह बात प्रकट हो जाती है कि उन्होंने कपोलकल्पित हेतुओं के द्वारा एक झूठा इतिहास रचने की कोशिश की है, लोगों की आँखों में धूल झौंकने का प्रयास किया है। अष्टम अध्याय में तथा इस अध्याय के प्रथम प्रकरण में उपस्थित किये गये पट्टावलीय, अभिलेखीय एवं साहित्यिक प्रमाण सिद्ध कर देते हैं कि आचार्य कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में हुए थे।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तृतीय प्रकरण

आचार्य हस्तीमल जी के दो मतों का निरसन

१

प्रथम मत : कुन्दकुन्दकाल ५वीं शती ई.

बीसवीं सदी ई० के श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों की सर्वथा उपेक्षा कर तथा **दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** में उद्धृत नन्दिसंघ की पट्टावली को अन्य दृष्टियों से प्रामाणिक मानते हुए भी पट्टकाल की दृष्टि से अप्रामाणिक मानकर अन्य पट्टावलियों के आधार पर षट्खण्डागम के रचनाकाल और कुन्दकुन्द के स्थितिकाल के निर्णय का प्रयत्न किया है। उन्होंने **नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली** को तो सर्वथा अप्रामाणिक घोषित कर दिया है और **तिलोयपण्णत्ती**, **धवलाटीका** तथा इन्द्रनन्दिकृत **श्रुतावतार** में प्रदत्त पट्टावलियों को प्रामाणिक स्वीकार करते हुए भी एकान्ततः दिगम्बराचार्य जिनसेनकृत **हरिवंशपुराण** की पट्टावली को सर्वोपरि प्रतिष्ठित कर, उसके आधार पर आचार्य कुन्दकुन्द का स्थितिकाल वीर नि० सं० १००० (ई० सन् ४७३) के आसपास आकलित किया है। वे अपना हेतुवाद प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

"सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि **हरिवंशपुराण** में दी गई आचार्य-परम्परा की पट्टावली अपने-आप में परिपूर्ण एवं सभी दृष्टियों से अन्य उपलब्ध पट्टावलियों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है। वीर नि० सं० १ से ६८३ तक और दूसरे शब्दों में केवली गौतम से लेकर अन्तिम आचारांगधर लोहार्य तक की ६८३ वर्ष की अवधि में जिनसेन ने २८ आचार्यों के नाम दिये हैं, जो धवला, तिलोयपण्णत्ती, श्रुतावतार आदि सभी प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा समर्थित हैं। **लोहाचार्य** के पश्चात् वीर नि० सं० ६८३ से वीर नि० सं० १३१० (शक सं० ७०५)[११७] तक कुल मिलाकर ६२७ वर्षों में जिनसेन ने ३१ (स्वयं को मिलाकर ३२) आचार्यों का होना बताया है, जो सभी दृष्टियों से सुसंगत प्रतीत होता है। यद्यपि जिनसेन ने **विनयंधर** से लेकर आचार्य **अमितसेन** तक ३१ आचार्यों का पृथक्-पृथक् आचार्यकाल नहीं दिया है, तथापि लोहाचार्य के पश्चात् वीर नि० सं० ६८३ से स्वयं द्वारा हरिवंशपुराण की समाप्ति का समय शक सं० ७०५, तदनुसार वीर नि० सं० १३१० देकर यह स्पष्ट कर दिया है कि **लोहार्य** से लेकर उन स्वयं (**जिनसेन**) तक की ६२७ वर्षों की अवधि में ३१ आचार्य हुए। इस ६२७ वर्ष के समुच्चय काल को ३१ आचार्यों में विभक्त किया जाय, तो मोटे

---

११७. हरिवंशपुराण ६६/ ५२-५३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तौर पर एक-एक आचार्य का काल २० वर्ष के लगभग आँका जा सकता है।'' (जै.ध.मौ.इ. / भा.२ / पृ.७४१-७४२)।

''हरिवंशपुराण और श्रुतावतार के उल्लेखों के आधार पर यह पहले सिद्ध किया जा चुका है कि वीर नि० सं० ६८३ में स्वर्गस्थ हुए अन्तिम आचारांगधर **लोहार्य** के पश्चात् और लगभग वीर नि० सं० ७६३ से ७८३ तक आचार्य पद पर रहे आचार्य **अर्हद्बलि** से पूर्व क्रमशः **विनयंधर** आदि चार आचार्य हुए। इन्द्रनन्दीकृत श्रुतावतार तथा अज्ञातकर्तृक नन्दीसंघ की प्राकृत पट्टावली में **अर्हद्बलि** के पश्चात् क्रमशः **माघनन्दी, धरसेन, पुष्पदन्त** और **भूतबलि** इन चार आचार्यों के होने का उल्लेख है।

''नन्दीसंघ की पट्टावली में भी कुन्दकुन्दाचार्य की गुरुपरम्परा निम्न रूप में उल्लिखित है— भद्रबाहु > गुप्तिगुप्त > माघनन्दी > जिनचन्द्र > कुन्दकुन्द।

''इन्द्रनन्दी ने श्रुतावतार में सुस्पष्ट रूप से लिखा है कि षट्खण्डागम और कषाय-प्राभृत का ज्ञान गुरुपरिपाटी से **पद्मनन्दी** मुनि को कुण्डकुन्दपुर में प्राप्त हुआ और उन्होंने षट्खण्डागम के आद्य तीन खण्डों पर १२,००० श्लोक-परिमाण की **परिकर्म** नामक टीका की रचना की।

''इस प्रकार हरिवंशपुराण, इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार, नन्दीसंघ की प्राकृत पट्टावली, इन तीनों ग्रन्थों के उल्लेखों से अर्हद्बलि निश्चितरूपेण कुन्दकुन्दाचार्य के प्रगुरु (दादागुरु) माघनन्दी से पूर्ववर्ती आचार्य सिद्ध होते हैं।

''नन्दीसंघ की पट्टावली में सर्वप्रथम **भद्रबाहु** (द्वितीय) और उनके पश्चात् **गुप्तिगुप्त** का नाम दिया है, पर इस पट्टावली से विद्वान् यही निष्कर्ष निकालते हैं कि **माघनन्दी** ही वस्तुतः नन्दीसंघ के प्रथम आचार्य, उनके शिष्य **जिनचन्द्र** और जिनचन्द्र के शिष्य **कुन्दकुन्दाचार्य** हुए।'' (जै.ध.मौ.इ. / भा.२ / पृ. ७५४)।

''आज से ११९० वर्ष पूर्व के हरिवंश के उल्लेख और उपरिवर्णित तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर आचार्य **अर्हद्बलि** का अन्तिम समय वीर नि० सं० ७८३ के आस-पास का सुनिश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार **अर्हद्बलि** का समय वीर नि० सं० ७८३ सिद्ध हो जाने पर उनके पश्चात् हुए **माघनन्दी** का आचार्यकाल २० वर्ष, **माघनन्दी** और **धरसेन** के बीच हुए आचार्यों के नाम और संख्या-विषयक उल्लेख के अभाव में उनके काल की गणना न कर के **धरसेन** का काल २० वर्ष, (वी० नि० सं० ८२३), **पुष्पदन्त** का ३० वर्ष, **जिनपालित** का समय ३० वर्ष अनुमानित किया जाय तो जिनपालित का अन्तिम समय वीर नि० सं० ८८३ के आस-पास का अनुमानित किया जा सकता है।

"इससे आगे जिनपालित और कुन्दकुन्दाचार्य के बीच में कितने काल में कितने आचार्य हुए, इस तथ्य को प्रकट करनेवाले तथ्यों के अभाव में इन्द्रनन्दी द्वारा **पद्मनन्दी** के सम्बन्ध में **श्रुतावतार** में उल्लिखित निम्नलिखित श्लोक के आधार पर अनुमान का सहारा लेने के अतिरिक्त **पद्मनन्दी (कुन्दकुन्दाचार्य)** के काल के बारे में विचार करने का और कोई मार्ग ही अवशिष्ट नहीं रह जाता—

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कुण्डकुन्दपुरे॥ १६०॥

श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वादशसहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थपरिकर्मकर्त्ता षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य॥ १६१॥

"इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि जिनपालित और कुन्दकुन्द के बीच में अधिक न सही तीन-चार आचार्य अवश्य हुए होंगे। उन अज्ञातनाम ३-४ आचार्यों का समुच्चय-काल कम से कम ६० वर्ष भी मान लिया जाय, तो आचार्य **पद्मनन्दी**, अपरनाम **कुन्दकुन्दाचार्य** का समय वीर नि० सं० ९४३ के आस-पास का और माघनन्दी तथा धरसेन के बीच में तीन-चार आचार्यों का अस्तित्व मान लेने की दशा में वीर नि० सं० १००० के आस-पास का अनुमानित किया जा सकता है।" (जै.ध.मौ.इ./भा.२/पृ.७६४)।

निरसन

केवल इण्डि. ऐण्टि.-पट्टावली प्रामाणिक, तदनुसार कुन्दकुन्दकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शती

हरिवंशपुराण की पट्टावली के आधार पर आचार्य कुन्दकुन्द का जो अस्तित्वकाल वीर नि० सं० १००० (४७३ ई०) अनुमानित होता है, उसकी पुष्टि **दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** में प्रकाशित नन्दिसंघीय पट्टावली से नहीं होती, **मर्कराताम्रपत्र** (४६६ ई०) से नहीं होती, **नोणमंगल के ताम्रपत्र-लेख** (४२५ ई०) से नहीं होती, जिसमें उन्हीं चन्दणन्दी भटार का उल्लेख है, जिनका मर्करा-ताम्रपत्र लेख में है। उसकी पुष्टि **श्रवणबेलगोल** के उन **शिलालेखों** से नहीं होती, जिनमें प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० के **उमास्वाति** को कुन्दकुन्दान्वय में उद्भूत बतलाया गया है और जिन्होंने **कुन्दकुन्द** के ग्रन्थों के आधार पर तत्त्वार्थसूत्र की रचना की है। उसकी पुष्टि कुन्दकुन्द की गाथाओं को उद्धृत करनेवाली **सर्वार्थसिद्धि** के रचनाकाल (४५० ई०) से नहीं होती तथा कुन्दकुन्द की गाथाओं और शैली को आत्मसात् करनेवाले **मूलाचार** और **भगवती-आराधना** नामक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ग्रन्थों के रचनाकाल (प्रथम शताब्दी ई०) से नहीं होती। इसलिए **हरिवंशपुराण** की पट्टावली तथा उससे साम्य रखनेवाली अन्य पट्टावलियाँ प्रामाणिक नहीं हैं। इसी कारण नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली भी अप्रामाणिक है।

पूर्व में 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' में छपी पट्टावली से तथा सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थसूत्र, मूलाचार, भगवती-आराधना आदि ग्रन्थों एवं मर्करा, नोणमंगल तथा श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में उपलब्ध प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी है और यह काल पट्टावली में लिखित पट्टकाल को बन्द आँखों से सत्य मानकर नहीं, अपितु उस पट्टकाल के औचित्य को सिद्ध करनेवाली युक्तियों, मर्करा और नोणमंगल के अभिलेखों में वर्णित यथार्थ घटनाओं एवं तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, भगवती-आराधना और मूलाचार में उपलब्ध कुन्दकुन्द के यथार्थ वचनों के आधार पर सिद्ध किया गया है। हरिवंशपुराणादि की पट्टावलियों में वर्णित पट्टकालों से कुन्दकुन्द का जो अस्तित्व काल फलित होता है, वह पट्टकालों के औचित्य की परीक्षा किये बिना पट्टावलीकार के वचनों को यथावत् सत्य मान लेने पर ही सत्य माना जा सकता है। औचित्य की परीक्षा करने पर तथा सर्वार्थसिद्धि आदि साहित्यिक प्रमाणों एवं मर्करा आदि के अभिलेखों की कसौटी पर कसने से वह मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

इस अपेक्षा से विचार करने पर षट्खण्डागम के सम्पादक डॉ० हीरालाल जी जैन का यह कथन युक्तिसंगत सिद्ध होता है कि "श्रुतपरम्परा के सम्बन्ध में 'हरिवंशपुराण' के कर्त्ता से लगाकर 'श्रुतावतार' के कर्त्ता इन्द्रनन्दी तक सब आचार्यों ने धोखा खाया है।" (ष.ख. / पु.१/ प्रस्ता. / पृ.२५)।

आचार्य हस्तीमल जी ने नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली के पट्टकाल को हरिवंशपुराण, तिलोयपण्णत्ती, श्रुतावतार आदि के आधार पर गलत सिद्ध किया है, किन्तु इन ग्रन्थों में उल्लिखित पट्टकाल सही क्यों है, इसका कोई कारण नहीं बतलाया। इन ग्रन्थों की पट्टावलियों में बतलाई गई बातें भी अनेकत्र परस्पर विरुद्ध हैं। जैसे—

१. हरिवंशपुराण की पट्टावली में लोहाचार्य के पश्चात् क्रमशः विनयन्धर, गुप्तऋषि, गुप्तश्रुति, शिवगुप्त एवं अर्हद्बलि के नाम हैं, जबकि धवला (पु.१ / पृ.६७, पु.९ / पृ.१३०-१३२) और तिलोयपण्णत्ती (४/१४९०-१५०४) की पट्टावलियों में इनका अभाव है।

२. सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु (भद्रबाहु द्वितीय) और लोहार्य (लोहाचार्य) इन चार आचारांगधरों का समग्रकाल तिलोयपण्णत्ती, धवला तथा हरिवंशपुराण की पट्टावलियों में ११८ वर्ष दिया गया है, किन्तु इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में केवल १८ वर्ष है तथा नामों में भी भिन्नता है। यथा—

प्रथमस्तेषु सुभद्रोऽभयभद्रोऽन्योऽपपरोऽपि जयबाहुः।
लोहार्योऽन्त्यश्चैतेऽष्टादशवर्षयुगसङ्ख्या॥ ८३॥

३. नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली में लोहाचार्य को नन्दिसंघीय बतलाया गया है, किन्तु हरिवंशपुराण की पट्टावली में उनका विनयन्धर आदि पुन्नाटसंघीय आचार्यों के आदिपुरुष के रूप में उल्लेख है। (ह.पु.६६/२२-३३, जै.सि.को.१/३२६)।

४. नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली में लोहाचार्य के पश्चात् अर्हद्बलि, माघनन्दी, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि के नाम हैं। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में लोहाचार्य के अनन्तर विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त इन चार आचार्यों के नाम देने के बाद अर्हद्बलि, माघनन्दी, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि के नामों का उल्लेख है। किन्तु हरिवंशपुराण की पट्टावली में विनयन्धर आदि चार आचार्यों के बाद केवल अर्हद्बलि का नाम है, माघनन्दी, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि के नाम अनुपलब्ध हैं। तथा आश्चर्य की बात यह है कि पट्टावली में पुन्नाटसंघी जयसेन को, जो स्वयं हरिवंशपुराणकार जिनसेन के परदादा गुरु थे, षट्खण्डागम एवं कर्मप्रकृतिश्रुत का ज्ञाता कहा गया है,[११८] जब कि षट्खण्डागम के उपदेष्टा और कर्त्तारूप में प्रसिद्ध धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि को पट्टावली में कहीं स्थान ही नहीं दिया गया। क्रमांक १८ पर श्रीधरसेन का नाम है, पर वे षट्खण्डागम के उपदेष्टा धरसेन से भिन्न हैं, क्योंकि उनके साथ पुष्पदन्त और भूतबलि के नाम नहीं हैं।

५. ये सभी पट्टावलियाँ अपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें उच्छेद से बचे हुए श्रुत को ग्रन्थारूढ़ करनेवाले धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, गुणधर, कुन्दकुन्द, उमास्वाति, समन्तभद्र, पूज्यपाद देवनन्दी जैसे महान् आचार्यों के नाम नहीं हैं। 'श्रुतावतार' इसका अपवाद है।

इन पारस्परिक भिन्नताओं के कारण उक्त पट्टावलियों से फलित होने वाला आचार्यों का पट्टकाल भी परस्पर भिन्न हो जाता है, अतः वे भी अप्रामाणिक सिद्ध होती हैं। तथा अपूर्ण होने के कारण तो वे अप्रामाणिक हैं ही। फलस्वरूप उनके आधार पर आचार्य हस्तीमल जी ने कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल जो वीर नि० सं० १००० (४७३ ई०) अनुमानित किया है, वह प्रामाणिक नहीं है।

आचार्य हस्तीमल जी का 'मूले कुठाराघातः'

आचार्य हस्तीमल जी की अपने ही निर्णयों के मूल पर कुठाराघात करने की

---

११८. अखण्ड-षट्खण्डमखण्डितस्थितिः समस्तसिद्धान्तमधत्त योऽर्थतः॥ ६६/२९॥
दधार कर्मप्रकृतिं श्रुतिं च यो जिताक्षवृत्तिर्जयसेनसद्गुरुः॥ ६६/३०॥
हरिवंशपुराण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रवृत्ति दर्शनीय है। पूर्व में यह दर्शाया जा चुका है कि उन्होंने 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' में प्रकाशित नन्दिसंघीय पट्टावली को भट्टारक-परम्परा के उद्भव, प्रसार एवं उत्कर्ष-काल के विषय में युक्तिसंगत एवं सर्वजन-समाधानकारी निर्णय पर पहुँचानेवाली माना है, जिसका तात्पर्य यह है कि उसमें दर्शाया गया पट्टधरों का पट्टकाल सत्य है। यदि उसे सत्य न माना जाय, तो पट्टावली भट्टारक-परम्परा के उदयकाल, प्रसारकाल एवं उत्कर्षकाल का युक्तिसंगत निर्णय नहीं करा पायेगी। अर्थात् उक्त पट्टावली भट्टारक-परम्परा के उद्भवकाल, प्रसारकाल एवं उत्कर्षकाल का युक्तिसंगत निर्णय तभी करा सकती है, जब उसमें दर्शाये गये भद्रबाहु (द्वितीय) के पट्टकाल विक्रम संवत् ४ से २५, गुप्तिगुप्त के पट्टकाल वि० सं० २६ से ३५, माघनन्दी के पट्टकाल वि० सं० ३६ से ३९, जिनचन्द्र के पट्टकाल वि० सं० ४० से ४८, कुन्दकुन्द के पट्टकाल वि० सं० ४९ से १०० और इसी तरह सभी पट्टधरों के पट्टकाल को सत्य माना जाय।

किन्तु , पट्टावली में प्रदर्शित पट्टकाल के आधार पर पट्टावली को भट्टारक-परम्परा के उद्भवकाल, प्रसारकाल और उत्कर्षकाल का युक्तिसंगत निर्णय करानेवाली मानते हुए भी, आचार्य हस्तीमल जी उसमें दर्शाये गये कुन्दकुन्द के पट्टकाल को सही नहीं मानते, अपितु हरिवंशपुराण की पट्टावली के आधार पर कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल वीर नि० सं० १००० (४७३ ई०) के आसपास मानते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' की पट्टावली पट्टधरों के पट्टकाल का सही प्रदर्शन न करने के कारण भट्टारक-परम्परा के उद्भव, प्रसार एवं उत्कर्ष-काल का युक्तिसंगत एवं सर्वजन-समाधानकारी निर्णय नहीं करा सकती। इस प्रकार आचार्य हस्तीमल जी ने इण्डियन ऐण्टि०-पट्टावली में निर्दिष्ट कुन्दकुन्द के पट्टकाल की वास्तविकता को अस्वीकार कर अपने ही निर्णीतार्थ की जड़ पर कुल्हाड़ी चला दी है, जिससे वे अनभिज्ञ हैं।

किन्तु , वे हरिवंशपुराण की पट्टावली को इसलिए प्रामाणिक नहीं मानते कि उनकी दृष्टि में हरिवंशपुराणकार प्रामाणिक (सत्य कथन करनेवाले) हैं। यदि वे हरिवंशपुराणकार को प्रामाणिक मानते, तो उन्होंने जो स्त्रीमुक्ति आदि का निषेध किया है, उसे भी प्रामाणिक (सत्य) मानते, किन्तु उनके द्वारा ऐसा किये जाने की कल्पना तो स्वप्न में भी नहीं की जा सकती। इससे सिद्ध है कि वे हरिवंशपुराणकार को प्रामाणिक नहीं मानते। तब उन्होंने हरिवंशपुराणकारकृत पट्टावली को प्रामाणिक क्यों कहा? इसका उत्तर स्पष्ट है कि उसे प्रामाणिक घोषित कर देने से वे जो यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कुन्दकुन्द अर्वाचीन हैं, वीर नि० सं० १००० (४७३ ई०) के आसपास के हैं, उसकी सिद्धि होती है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हम हरिवंशपुराण में वर्णित स्त्रीमुक्ति आदि के निषेध को प्रामाणिक इसलिए मानते हैं कि वह आगम के अनुकूल है। किन्तु पट्टावलियों का सम्बन्ध आगम से नहीं है, इतिहास से है और ऐतिहासिक प्रमाणों से हरिवंशपुराण की पट्टावली प्रामाणिक सिद्ध नहीं होती, अतः हम उसे अप्रामाणिक मानते हैं।

हम देखते हैं कि 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' की नन्दिसंघीय पट्टावली में कुन्दकुन्द का जो ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में अस्तित्व दर्शाया गया है, वह साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से पुष्ट होता है, जब कि हरिवंशपुराण की पट्टावली से फलित होनेवाले काल की पुष्टि साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से नहीं होती। अतः 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी', में प्रकाशित पट्टावली ही प्रामाणिक है, हरिवंशपुराण की नहीं। इस प्रकार आचार्य हस्तीमल जी का कुन्दकुन्द को वीर नि० सं० १००० (४७३ ई०) के आसपास का सिद्ध करनेवाला हेतुवाद निरस्त हो जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने अस्तित्व से ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध तथा ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध को ही मण्डित किया था।

२

द्वितीय (संशोधित) मत : कुन्दकुन्दकाल ८वीं शती ई.

आचार्य हस्तीमल जी ने सन् १९८३ में बड़े जोर-शोर से हरिवंशपुराण की पट्टावली को प्रामाणिक घोषित कर उसके आधार पर कुन्दकुन्द का स्थितिकाल वीर नि० सं० १००० (४७३ ई०) के लगभग निर्धारित किया था। अभी उसकी स्याही भी नहीं सूख पायी थी कि उन्होंने चार साल बाद ही सन् १९८७ में उसे निरस्त कर दिया और एक अत्यन्त अर्वाचीन **पण्डित महिपाल** द्वारा विक्रम सं० १९४० (१८८३ ई०) में मन से गढ़ी गई कथा को हरिवंशपुराण और 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' की पट्टावलियों से भी अधिक प्रामाणिक मानकर आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्वकाल उसमें लिखे अनुसार विक्रम संवत् ७७० (७१३ ई०) आँख बन्द करके स्वीकार कर लिया। उसकी प्रामाणिकता पर रंचमात्र भी शंका प्रकट नहीं की। अन्य स्रोतों से उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा करने का शोधकार का धर्म भी नहीं निभाया। पण्डित महिपाल को सर्वज्ञ के समान आप्तपुरुष मानकर उसके वचन को एक परम श्रद्धालु शिष्य की तरह चुपचाप स्वीकार कर लिया और महान् दिगम्बर-परम्परा के इतिहास को एक अत्यन्त अप्रामाणिक पुरुष के हाथ का खिलौना बना दिया। उस मनगढ़न्त कथा की हस्तलिखित पुस्तिका प्राप्त होने को आचार्य हस्तीमल जी की एक महान् खोज कहकर विज्ञापित किया गया। उसे एक ऐसी क्रान्तिकारी खोज बतलाया गया जैसे आचार्य जी ने पारसमणि ढूँढ़ लिया हो या मंगलग्रह पर जीवन की खोज कर ली हो। आश्चर्य तो यह है

कि आचार्य जी ने उस कथा का उल्लेख करनेवाली पुस्तिका की प्राप्ति को ही खोज मान लिया। कथा की प्रामाणिकता को खोजने का प्रयास नहीं किया। यह तो देखा ही नहीं कि हाथ क्या लगा है? रजत या सीपी? अस्तु। इसका निर्णय आगे हो जायेगा और आचार्य जी ने उक्त कथा की प्रामाणिकता की परीक्षा किये बिना ही उसे प्रामाणिक क्यों मान लिया इसका खुलासा भी आगे हो जायेगा। इस हेतु उक्त कथा पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। आचार्य श्री हस्तीमल जी ने अपनी इस खोज की महिमा का बखान **श्री गजसिंह राठौड़** द्वारा लिखाये गये '**भूले बिसरे ऐतिहासिक तथ्य**' नामक लेख में कराया है और उसे अपने ग्रन्थ **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (भाग ४) में उद्धृत किया है। उसे यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ। उसमें पण्डित महिपाल द्वारा लिखित **प्रतिष्ठापाठ** में वर्णित कुन्दकुन्द-कथा भी उद्धृत है।'

भूले बिसरे ऐतिहासिक तथ्य

लेखक : गजसिंह राठौड़

''सागर के गहन तल में जिस प्रकार कई अनमोल मोती, बहुमूल्य रत्न और भाँति-भाँति की निधियाँ छिपी होती हैं, ठीक उसी प्रकार जैन इतिहास के आत्यन्तिक महत्त्व के ऐतिहासिक तथ्य विस्मृति के गर्भ में छुपे पड़े हैं। जिस प्रकार साहसी गोताखोर गहरी डुबकियाँ लगाकर अथाह समुद्र के तल से समय-समय पर उन अमूल्य निधियों को खोज निकालते हैं, ठीक उसी प्रकार विस्मृति के गहन गर्भरूपी समुद्र में छिपे इतिहास के अलभ्य ऐतिहासिक तथ्यों को कोई बिरले ही शोध-प्रिय विद्वान् प्रकाश में लाने में सफलकाम होते हैं।

''इस युग के महान् अध्यात्मयोगी जैनाचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने सदियों से विलुप्त माने जाते रहे जैन-इतिहास को गहन शोध के अनन्तर जैन जगत् के समक्ष रक्खा है। ईस्वी सन् १९८५, तदनुसार वीर निर्वाण संवत् २५११-१२ के भोपालगढ़ चातुर्मासावास-काल में आचार्यश्री ने एक ऐसी ऐतिहासिक कृति को खोज निकाला है, जो दिगम्बरपरम्परा के महान् आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के समय के सम्बन्ध में अद्यावधि चली आ रही विवादास्पद गुत्थी को सुलझाने में सम्भवतः पर्याप्त मार्गदर्शिका बन सकती है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न अभिमत हैं, जो प्रायः सभी एकमात्र अनुमानों पर ही आधारित हैं। आचार्य श्री कुन्दकुन्द के सुनिश्चित समय को बतानेवाला अद्यावधि एक भी प्रामाणिक उल्लेख अथवा कोई ठोस आधार उपलब्ध नहीं है। शोधरुचि आचार्यश्री ने प्राचीन हस्तलिखित पत्रों के पुलिन्दे में से '**अथ प्रतिष्ठापाठ लिख्यते**' शीर्षकवाली जो एक प्रति खोज निकाली

है, उसमें दिगम्बरपरम्परा के अनेक भट्टारकों एवं आचार्यों के समय के सम्बन्ध में प्रकाश डालने के साथ दिगम्बरपरम्परा के महान् आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के जीवनवृत्त पर निम्नलिखित रूप में विस्तृत विवरण उपलब्ध हुआ, जो इतिहास में अभिरुचि रखनेवाले विज्ञों के लिये यहाँ अक्षरशः उद्धृत किया जा रहा है।

"---- संवत् ७७० के साल वारानगर में श्री कुन्दकुन्दाचार्य मुनिराज भये तिनका व्याख्यान करजे छे। कुन्दसेठ कुन्दलता सेठाणी के पाँचवाँ स्वर्ग को देव चय करि गर्भ में आये ति दिन सुं सेठ का नांव प्रसिद्ध हुआ। काहै ते पुष्पादिक की वर्षा का कारण से नव महिना पीछे पुत्र का जन्म भया ता समय में श्वेताम्बरन की आम्नाय विसेस होय रही, दिगम्बर सम्प्रदाय उठ गई। एक जिनचन्द मुनि रामगिर पर्वत में रहै ताका दर्शन सेठजी करवो करै सोभाग्ये पुत्र आठ वर्ष का हुआ अर उठीने श्री आचार्य का आयुकर्म नजीके आया वे॥ कुमार नित्य आवे छा सो पूर्वला कारण तै कुन्दकुन्द कुमार दीक्षा लेता भया। आचार्य तो देवलोक पधारे अर कुन्दकुन्द मुनिराज का मार्ग विशेष जान्या नहीं सो अपने गुरु स्थापना के निकट ही ध्यान करता भया सोयन का ध्यान के प्रभाव तै सिंह व्याघ्रादिक सांत भाव कूँ प्राप्त भया श्री स्वामी ऐसा ध्यान प्रगट भया तीन ज्ञान अगोचर श्री सीमंदर स्वामी पूर्वले विदेह क्षेत्र का राजा तिन का ध्यान स्वामी ने सरू कर्या। आदि समवसरण की रचना विधिपूर्वक चित्त रूपी महल में बनाया वा के बीच गंधकुटी रच दीनी अर वारा सभा सहित रचना बनाय सिंहासन उपर च्यार अंगुल अन्तरीक श्री महाराजि श्री सीमंदर स्वामी कूँ विराजमान देख करि तत्काल श्री कुन्दकुन्द यतिराज नमस्कार करता भया। बस ही समय में विदेह क्षेत्र में श्री भगवान् मुनिराज कूँ धर्मवृद्धि दीनी तदि चक्रवर्त्यादिक महंत पुरुषा कै बडो विस्मय उत्पन्न हुओ अवार कोई इन्द्रदेव मनुष्य में कोई भी आया नहीं अर स्वामी धर्मवृद्धि दीनी ता का कारण कह्या। तदि महापद्म चक्रधर आदि सब ही राजा उठ करि स्वामी कूँ नमस्कार करि पूछते भये भो सर्वज्ञ देव! या धर्मवृद्धि आप कुणा कूँ दीनी ये वचन सुणि करि स्वामी दिव्य ध्वनि से व्याख्यान किया हे महापद्म! भरत क्षेत्र का आर्य खण्ड में रामगिर पर्वत के उपरि कुन्दकुद मुनिराज तिष्ठे हैं। उनमें अचावार मन वचन काया की सुधता करि र नमस्कार कीयो तदि धर्मवृद्धि दीनी है। ऐसा स्वामी का वचन सुण करि सभी सभा के लोगन के उर में आश्चर्य उपज्यो। भो भगवन्! आपकी दिव्य ध्वनि पहली भले प्रकार हम सुनी हती ज्यो भरतादिक दश क्षेत्र में धर्म का मार्ग नाहीं अर पाखंडी बहुत है। जिन धर्म का नाम मात्र जानेगा नाहीं। अघ वीपरीत मार्ग में चालेगा, पाखंडी लोगों की मान्यता बहुत होयगी। गुरुद्रोही लोक हो जायगा। स्व-स्व कल्पित ग्रन्थ बाचेंगे। अनेक पाखण्ड रचेंगे। जिनराज का धर्म आज्ञा समान कूँ कहुं दीखेगा। पाखंडी का मठ जागि-जागि धावेंगे। व्यन्तर आदिक

कुदेव का चमत्कार प्रतिभासेगा स्व-स्व धर्म छोड़िकरि सब ही लोक उन्मार्ग में धंसेंगे। अब आपके मुख ऐसा ऋद्धि धारक मुनिराज का नाम सुन्या सो हमारे बड़ा आश्चर्य है। तदि केवलि वर्णन करते भये ऐसा मुनिराज बिरले होय है। आग्या का चिमत्कार समान आर्य खण्ड में चिमत्कार होयवो करेंगे, वे सुर्गवासी देव का जीव है। इहां सभा में रविप्रभ सूर्यप्रभ देव हैं। तिनका वे आगले भव के भाई हैं। ऐसा शब्द होते दोय देव श्री भगवान् के निकटि आये नमस्कार करि सकल व्याख्यान पूछ्या अर मुनिराज का दर्शण करणे वास्ते रामगिर उपर आवते भये। जिस वखत देव आये ता समे में रात्रि थी तदि मुनिराज कूँ नमस्कार करि र बैठ्या। मुनिराज बोल्या नहीं। अब उनका शिष्य विना ध्यान तिष्ठे छै तिनका दर्शन भया। उन से ही बतलावणा होत भई। अर देर देव ने कही श्रीमंदर स्वामी तुमकुं धर्मवृद्धि दीनी तदि मैं अठै आया। अबे स्वामी बोलते नहीं सो हम भगवान् के समोसरण में ही पाछा जावां छां। या कहीर देव भगवान् के समोसरण में गये। अब प्रभातिक का समय हुआ। तदि प्रभाति का नमस्कार सब ही शिष्य करते भये अर रात्रि का समाचार श्रीमंदर स्वामी सम्बन्धी सर्व विधिपूर्वक मालूम करया। अर फेर कही देव दोय आपके दर्शन करण कूँ आया सो आपका दर्शन करि र वे देव भगवंत की सभा में ही गये। ये समाचार सुणि कर श्री कुन्दकुन्द मुनिराज विशेष आनन्द कूँ प्राप्त भये, अर चौडे ऐसा शब्द का प्रकाश करते भये। अब श्रीमंदर स्वामी का दर्शन करेंगे तदि आहारादिक लेंगे। या कहि करि स्वामी फिर मौनि धार करि ध्यान में मगन भये। ऐसा ध्यान आवे तदि वेसा कारण होय। अवि दो च्यार दिन में चित्त की थिरता ते वैसा ही ध्यान प्रकट भया। अर समवसरण वणाया अर साक्षात्कार श्रीमंदर स्वामी कूँ नमस्कार करता भया, वैसा समय धर्मवृद्धि फैरि भगवंत की हुई। अर प्रस्न भया अर भगवान् कही ज्यो देव गये थे सो पाछै आये अब उनके ऐसा नियम हुआ के ज्यो दर्शण विन सर्व त्याग है। तदि देवां कही भो स्वामिन्! वे आये नहीं तदि भगवंत आज्ञा करी तम बेसमय गये तब देव पूछते भये समय कौनसा तदि भगवंत कहि। यहाँ रात्रि होती वहाँ दिन है। वहाँ दिन है यहाँ रात्रि है। सूर्य का गमन ऐसा है सो तुम दिन में वाँ जाओ तो वन का आगमन हो जायगा। ऐसा वचन सुनि करि वे दोन्यू देव ध्यान (दिन) समय में आये मुनिराज का दर्शन हुआ अर परस्पर वचनालाप हुआ। देव हाथ जोडि नमस्कार विनती करी आप विमान में विराज अर श्रीमंदर स्वामी का दर्शण करो या बात सुणिकरि प्रसन होय आप विमाण में विराजे अर विमाण आकाश मार्ग चाल्यो सो अनुक्रम से क्षेत्र भोगभूमि का देश के उपरि विमाण चल्या जाय छाँ, सो स्वामी के सामायक का समय आ गया सो सामायिक करती बखत पीछी हाथन से गिर पड़ी अर पवन का वेग अत्यन्त लाग्या ही तदि स्वामी कही अब हमारा गमन अगारी नहीं काहे, ते मुनिराज का बाना बिना मुनिराज की पिछानी नाहीं तदि देव

पीछी हेरण कूँ बड़ा यतन किया तदि पीछी पाई नहीं, अर गृध्र पक्षी जाति के जिनावर की पांखडी हुती सो वै अति कोमल तिनकूँ भैली करि उनकी पीछी आकार बनाय श्री मुनिराज कूँ सौंपी तदि आप कोमल जाणि अर धर्म का कारण करणे के निमित्त अंगीकार करि करि र अगाडी गमन करता भया। इस कारण से दूसरा नाम गृध्रपिछाचार्य प्रकट भया। अब विदेह क्षेत्र में जाय पहुँचे। श्रीमंदर स्वामी का समोसरण मानस्थंभादि विभूति युक्ति देखकरि प्रसन्न भये, आप अन्तरंग की सुधता धारी विमाण से उतरि भगवान् का समवसरण में प्रवेश किया अर सीमंदर स्वामी के तीन प्रदक्षिणा दे करि नमस्कार किया अर स्तुति करि अहो सर्वज्ञ तुम्हारी महिमा अगम्य है, अगोचर है, आप सकल वस्तु कौ सदी वही देखो, हौर आप जगत के गुरु हो, आप परमेसुर हो, आपके नाम से अनेक जन्म के पाप प्रलय होय हैं। आपका केवलान सर्व प्रतिभासी है। आप पूज्याधिक हो, आप ब्रह्मरूप हो, चतुर्मुख हो, गणधरादिक देव भी तुम्हारे गुणगण कथन करते थाक गये, हमारि कहा गति? आजि हमारा शरीर सफल भया आजि हमारी मोक्ष भई मानूँ ऐसा मैं आनन्द मानूँ या कह करि भगवान् की गंध कुटी की कटनि उपरि देव बैठावते भये, काहे तेवा का शरीर पाँच से धनुष का अर ये ६ हाथ काय सकारण, वैसे ही समय में चक्रधर आयो गंध कुटी कै उपर नजरि गई तदि हात भैले करि विचार करता भया॥ यह कौन सा आकार है छ खण्ड में यह आकार कहूं देख्या नहीं। ऐसा आकार कौन का है। तदि चक्रधर भगवान् कूं पूंछता भया हे जिनेन्द्र! ये मनुष्यों का आकार कौन सा जीव है। तदि भगवान् की दिव्य ध्वनि हुई। यह भरत के मुनिराज हैं। तुम पहली धर्मवृद्धि का कारण पूछता था सो अब ये दर्शण करने निमित्त आये हैं। ऐसा शब्द सुणिकारि प्रसन्न होय चक्रधर मुनिराय कूं कटनी उपरि विराजमान करि र नमस्कार करता भया तदि मुनिराज का नाम एलाचार्य प्रकट होता भया। अर भगवान् की आज्ञा हुई। इन कूं सकल संदेह का निवारण करावणे वाला सिद्धांत सिखाओ। अर ग्रंथ लिखाय द्यो, सो यो धर्म का उद्योतक होयगा। अब आपके जैसा संदेह छा सो सब भगवान् सूं पूछ करि निसंदेह भया, एक दिन चक्रधर विनती करी आप आहार कूं उतरो तदि आप कहि जोग्यता नाहीं काहे ते इहा दिन हमारा क्षेत्र में रात्रि हम वांहां के उपजे याशे आहार कैसो अंगीकार करे सो स्वामी दिन सात (७) तांई निराहार रहे। भगवान् की दिव्य ध्वनि निरूपी अमृत के पीवते क्षुधा बाधा नै देती भई, च्यार शास्त्र लिखाये।

"मतान्तर निर्णय चौरासी हजार, सर्व सिद्धान्त मन बियासी हजार, कम प्रकाश बहतरि हजार, न्याय प्रकाश बासठि हजार। ऐसे ग्रंथ च्यार लेकरि भगवान् सूं आज्ञा मांगी देव विमाण में बैठ करि रामगिरि उपरि आय विराजे देव अपने स्थानक गए अब सर्व ही स्वामी की आग्या में चालते भये। श्वेताम्बर धर्म छुड़ाय दिगम्बर धर्म

का मार्ग बताया अर धन वाले कूं धन बताया, पुत्रवान् कूं पुत्र दिया, राज्य वाला कूं राज्य दीनो। केवल धर्म का मार्ग बधावा के निमित्त हजारु श्रावक व्रती हो गये। कुंद सेठ सबन का मालिक भया। ५९४ मुनिराज हुआ। ४०० आर्जिका हुई। अब आप सकल संघ सहित श्री गिरनारजी की यात्रा वास्ते चालता भया अर श्वेताम्बरीन का संघ भी जावा चाल्या, तिनकी संख्या श्रीपूज्य तो ८४ गच्छ के अर यति १२००० अर वन के श्रावक श्रावकणी दोय लाख बावन हजार अरु चाकर पयादे बहुत सो ये दोउ संघ गिरनारजी के नीचे अपणी अपणी हद में मुकाम करते भये। तदि श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी का संघ ऊपर चढ़ने लगा तदि श्वेताम्बरीन का हलकारा अगाड़ी नहीं करणे दीना। अर कही पहली यात्रा हमारी होयगी पीछे यात्रा तुम्हारी होयगी। यह समाचार सुणि करि सब ही पाछा आय गया। अर आचार्य सूं विनती करी हे नाथ! यह श्वेताम्बरी तो बहोत। अपना संघ थोड़ा सो यात्रा कैसे होवेगी तदि आचार्य आज्ञा करी तुम बांसुं कहो तुमारे हमारे कछु वैर तो है नहीं अर जो तुम अपने मत का आडम्बर राख्या चावो छो तो अरु याहां आवो जो जीतेंगे सो ही पहली यात्रा करेगा। अबे यात्रा तुम भी नहीं करोगे ऐसा वचन होता थका दौन्यू संघ का ही वाद ठहर्‌या ज्यो जीते सो यात्रा पहली करेगा। दिगम्बर के स्वामी श्री कुन्दकुन्दाचार्य अर श्वेताम्बर के मालिक श्रुक्ताचार्य जा के चौइस महाकाल पक्ष का साधन सो इनकै केतेक दिन तलक वाद भया। जदि येक दिन श्रुक्ताचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का कमंडल में छाकरि दीनी अर समस्या सै कोई कहीये काहे का मुनि है यन का आचरण धीवर का है। ऐसी बात सुणि करि कोई श्रावक कही स्वामी कमंडल में कांई छै। स्वामी कही कमंडल के जल में फूल है। स्वामी दिखाओ। तदि कमंडल उंधो करयो। सो कमंडल में सूं फूल के ढेर हो गया। अर स्वामी का नाम चौथा पद्मनन्दि स्वामी प्रकट भया। श्रुक्ताचार्य पीछी कमंडल दोनूं उडाय दीनां। तदि स्वामी सब यतीन की चादर बैठना उडाय दीना। श्रुक्ताचार्य कूं नग्न करि दीना। पीछे तो ऊपर चांद स्या नीचे इस तरे से चादरि चादरि परि पीछी होय गई, कूंठ ने लगी यति बाहर मेलने लाग्या ऐसा स्वामी चिमत्कार बताया। अब आप बोल्या ऐसी धूर्त विद्या से बाद नहीं होता है। अब मैं कहता हूँ या सरस्वती की प्रतिमा पाषाणमयी छे इनै बुलावो ज्यो कहै सो इ पहली यात्रा करेगा। तदि श्रुक्ताचार्य अनेक पक्ष की स्थापना करी बुलाई तो भी नहीं बोली। तदि स्वामी आप कमंडल पीछी हाथ में ले करि श्री सीमंदर स्वामी कूं नमस्कार करि पीछी सरस्वती का शिर उपर धरि करि आप प्रकट बोलते भये। हे देवी! अब तूं सत्य वचन का प्रकाश करहु तदि देवी गर्जना रूप तीन बोल प्रकट बोली आदि दिगम्बर, आदि दिगम्बर, आदि दिगम्बर, गर्भ का बालक है चिहू जामे तदि दिगम्बर सम्प्रदाय सत्य रूपी होय गई। श्वेताम्बरी भी देवी कूं बुलावना-

सत्य वचन का प्रकाश करहु तदि देवी गर्जना रूप तीन बोल प्रकट बोली आदि दि.-सरु करयात देवी कही तुम बारा बरस तलक झगड़ा करो हमने एक सत्यार्थ था सो ई कह्या। तदि श्वेताम्बरी के सैकरूं शिष्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य भये। अर प्रथम यात्रा श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी का संघ का लोग करता भया। अर श्री नेमिनाथ भगवान् की प्रतिष्ठा करी। अर सकलगिर प्रतिष्ठित भया।

"तदि मूलसंघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगण श्री कुन्दकुन्दाचार्य का वंश बड़े नन्दि मुनिराज कूं आचार्य पद दीना सो उनकी आमनाय सकल संख्या गायत्री कर्म अंग न्यासादिक कर्म, प्रतिष्ठा, कलशाभिषेक, पूजा, दान, यात्रा, इत्यादि छहूं कर्मन की स्थापना करी सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप तीन वलय का सूत्र की यज्ञोपवीत श्रावक लोग कूं दीनी। अर जिनमार्ग का प्रकाश करि र आप वापनारा नाम नगर के वन में आये सब श्रावकन कूँ शिष्या (शिक्षा) दे करि आप सन्यास धारि करि पाँचवे स्वर्ग गये। विशेष अधिकार बड़े ग्रन्थन से जाणा लेणा यहाँ अधिकार मात्र वर्णन किया है।"

प्रतिष्ठापाठ शीर्षकवाली इस लघु पुस्तिका के उपरिलिखित उद्धरण से निम्न-लिखित चार तथ्य प्रकाश में आते हैं—

"१. दिगम्बर-परम्परा के महान् प्रभावक आचार्य श्री कुन्दकुन्द विक्रम संवत् ७७० में विद्यमान थे।

"२. उनके गुरु का नाम आचार्य श्री जिनचन्द्र था।

"३. आचार्य जिनचन्द्र रामगिरि पर्वत पर रहते थे।

"४. श्रमण भगवान् महावीर के धर्मसंघ के एक अंग दिगम्बरसम्प्रदाय में ब्राह्मणों ही के समान श्रावकों के लिये त्रिकाल सन्ध्या, (गायत्री कर्म अंगन्यासादि कर्म), कलशाभिषेक, प्रतिष्ठा, पूजा, दान और यात्रा ये छ कर्म और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के प्रतीक रूपी तीन वलय के सूत्र की यज्ञोपवीत धारण करने की अनिवार्यरूपेण परमावश्यक प्रथा आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा प्रचलित की गई।

"आचार्य श्री कुन्दकुन्द आचार्य श्री जिनचन्द्र के शिष्य थे इस बात की पुष्टि इंडियन ऐन्टीक्यूरी के आधार पर विद्वानों द्वारा निर्णीत की गई नन्दीसंघ की पट्टावली से भी होती है। उक्त पट्टावली में चौथे आचार्य का नाम जिनचन्द्र और पाँचवें आचार्य का नाम कुन्दकुन्दाचार्य उल्लिखित है।[११९]

११९. क— जैन धर्म का मौलिक इतिहास / भाग ३ / पृष्ठ १३६ व १३७।
ख— नन्दिसंघ की पट्टावली / जैन धर्म का मौलिक इतिहास / भाग २ / पृष्ठ ७५४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इस लघु पुस्तिका में आचार्य श्री कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित संवत् का उल्लेख किया गया है कि वे विक्रम संवत् ७७० में (तदनुसार ईस्वी सन् ७१३ एवं वीर निर्वाण संवत् १२४०) में हुए। इस प्रकार के निश्चित संवत् का उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द के सम्बन्ध में जैन वाङ्मय में, श्वेताम्बर अथवा दिगम्बर-परम्परा की पट्टावलियों आदि में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता।

"इसी प्रकार जैन श्रावक के लिये तीन सूत्र की यज्ञोपवीत धारण करना, त्रिकाल सन्ध्या, गायत्री कर्म, अंगन्यासादिकर्म, प्रतिष्ठा, कलशाभिषेक, आदि जिनका कि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर-परम्परा के आगमों अथवा आगमिक ग्रन्थों में कहीं भी उल्लेख उपलब्ध नहीं होता, उन सब कर्मकांडों का ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी उल्लेख उपलब्ध नहीं होता, उन सब ब्राह्मणिक कर्मकांडों का प्रचलन आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने ही दिगम्बर-परम्परा में प्रारम्भ किया, इस बात का उल्लेख भी स्पष्ट रूप से इस लघु पुस्तिका में है। इस दृष्टि से भी इस **प्रतिष्ठापाठ** नाम का हस्तलिखित पुस्तिका का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर पौराणिक ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख है कि अहर्निश धर्माराधन में निरत रहनेवाले माहणवर्ग की पहिचान के लिये भरत चक्रवर्ती ने रत्नविशेष से यज्ञोपवीत की भाँति की तीन रेखाएँ प्रत्येक माहण के दक्षिण स्कन्ध से वाम वक्षस्थल और वाम पृष्ठभाग तक अंकित कर दी थीं। यज्ञोपवीत जैसा यह चिह्न भरत चक्रवर्ती ने इस उद्देश्य से किया था कि जो माहण वस्तुतः धर्माराधन में, अध्ययन-अध्यापन में ही निरत रहते थे और भरत चक्रवर्ती द्वारा इस प्रकार के नितान्त धर्मनिष्ठ माहणों के लिये प्रदान की गई अशन, पान, आवास, परिधान आदि की सुविधाओं का उपभोग दूसरे छद्म व्यक्ति न कर सकें। माहणों के लिये इस प्रकार की व्यवस्था भरत चक्रवर्ती द्वारा की गई थी, न कि किसी भी तीर्थंकर महाप्रभु अथवा किसी धर्माचार्य द्वारा। चतुर्विध तीर्थ की स्थापना तीर्थंकर प्रभु द्वारा की गई थी। उसमें श्रावक वर्ग भी सम्मिलित था। चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के समय ऋषभादि महावीरान्त चौबीसों तीर्थंकरों में से किसी भी तीर्थंकर महाप्रभु ने श्रावक वर्ग के लिये त्रिकाल सन्ध्या, कलशाभिषेक, प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा अथवा यज्ञोपवीत का विधान किया हो, इस प्रकार का एक भी उल्लेख सम्पूर्ण आगमिक वाङ्मय में कहीं नाम मात्र के लिये भी दृष्टिगोचर नहीं होता। श्रमण भगवान् महावीर के समय में भी श्रावकों ने यज्ञोपवीत धारण किया हो, इस प्रकार का एक भी उल्लेख कहीं उपलब्ध नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में इस लघु पुस्तिका के एतद्-विषयक उपरि वर्णित उल्लेख से यह आत्यन्तिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आता है कि आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने ही दिगम्बर-परम्परा में यज्ञोपवीत एवं उपर्युक्त छहों कर्मों का विधान किया।

"इस प्रकार आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज द्वारा खोज निकाली गई इस लघु पुस्तिका से इन ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है कि आचार्य कुन्दकुन्द ईस्वी सन् ७१३ में विद्यमान थे। वे भट्टारक श्री जिनचन्द्र के शिष्य थे, उन्होंने रामगिरि पर्वत पर बाल्यावस्था में भट्टारक जिनचन्द्र के पास पंच महाव्रतों की दीक्षा ग्रहण की थी और कालान्तर में इन्हीं आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने दिगम्बरपरम्परा में श्रावकों के लिये यज्ञोपवीत के साथ-साथ षट्कर्मों का प्रचलन प्रारम्भ किया।

"**प्रतिष्ठापाठ** नामक इस पुस्तिका का आलेखन आज से लगभग १०३ वर्ष पूर्व विक्रम सम्वत् १९४० में पंडित महिपाल द्वारा गणेश नामक ब्राह्मण से करवाया गया। इस प्रति का लेखन किस प्राचीन प्रति के आधार पर करवाया गया, इस सम्बन्ध में केवल इतना ही उल्लेख है "ई मरजाद प्रतिष्ठा हुई, सो आगम के अनुसार लिखी है।"

"इस उल्लेख से यही प्रकट होता है कि प्रतिष्ठा-सम्बन्धी प्राचीन पत्रों के आधार पर ही सम्भवतः इस पुस्तिका का आलेखन करवाया गया होगा। यह **प्रतिष्ठापाठ** नाम की लघु पुस्तिका स्थान-स्थान पर अतिशयोक्तियों से ओत-प्रोत है, किसी एक प्रतिष्ठा पर ३८ करोड़ रुपया, किसी दूसरी पर २४ करोड़ रुपया, तो किसी पर १९ करोड़ रुपया, किसी पर ३६ करोड़ रुपया, किसी पर ३५ करोड़ रुपया आदि व्यय किये जाने का उल्लेख है। सब मिलाकर बीस प्रतिष्ठाओं पर लगभग साढ़े चार अरब रुपये खर्च किये जाने का इस लघु पुस्तिका में उल्लेख है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द द्वारा करवाई गई प्रतिष्ठाओं और उनके तत्त्वावधान में तीर्थयात्रा के लिये निकाले गये सुविशाल संघ पर जो धन व्यय हुआ वह इस राशि में सम्मिलित नहीं है।

"इतना सब कुछ होते हुए भी इसमें उल्लिखित अनेक भट्टारकों के नाम और उनका काल ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक प्रतीत होता है। इनके नाम एवं काल की पुष्टि 'इंडियन ऐण्टिक्यूरी' के आधार पर तैयार की गई नन्दीसंघ की पट्टावली एवं कतिपय शिलालेखों से भी होती है। इसी कारण यह लघु पुस्तिका इतिहासविदों से गहन शोध की अपेक्षा करती है। आशा है शोधप्रिय इतिहासज्ञ इस सम्बन्ध में अग्रेतन शोध के माध्यम से आचार्य कुन्दकुन्द के समय एवं उनके द्वारा श्रावकों के लिये प्रारम्भ किये गये यज्ञोपवीत आदि विधानों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।" (जै.ध.मौ.इ./ भा.४ / पृ.२१-२८)।

निरसन

कुन्दकुन्द-काल के सुनिश्चित संवत् का उल्लेख केवल इण्डि. ऐण्टि. में

१. इस कथा का वर्णन करनेवाली **प्रतिष्ठापाठ** नामक हस्तलिखित पुस्तिका की प्राप्ति को आचार्य श्री हस्तीमल जी की बहुत बड़ी खोज बतलाया गया है। किन्तु यह कथा छिपी ही नहीं थी। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने सन् १९४२ में लिखे एक लेख में इसकी चर्चा की है और यह भी बतलाया है कि यह कथा **ज्ञानप्रबोध** नामक पद्यबद्ध भाषाग्रन्थ में दी गयी है। (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.२५९)। इस ग्रन्थ में यह नहीं लिखा है कि कुन्दकुन्द संवत् ७७० में हुए थे। यदि लिखा होता, तो प्रेमी जी अवश्य इसका उल्लेख करते और इसकी प्रामाणिकता की परीक्षा करते। इससे स्पष्ट होता है कि **प्रतिष्ठापाठ** के लेखक ने उक्त कथा में कुन्दकुन्द के सं० ७७० में होने की बात अपने मन से जोड़ दी है।

२. आचार्य हस्तीमल जी के विचारों को प्रस्तुत करते हुए श्री गजसिंह राठौड़ कहते हैं कि उक्त **प्रतिष्ठापाठ** नामक लघु पुस्तिका में "आचार्य श्री कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित संवत् का उल्लेख किया गया है कि वे विक्रम संवत् ७७० में (तदनुसार ईस्वी सन् ७१३ एवं वीर निर्वाण संवत् १२४०) में हुए। इस प्रकार का निश्चित संवत् का उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द के सम्बन्ध में जैन वाङ्मय में श्वेताम्बर अथवा दिगम्बर परम्परा की पट्टावलियों आदि में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता।" (जै.ध.मौ.इ./भा.४/पृ.२६)।

आचार्य जी ने ऐसा इसलिए कहा है कि उन्होंने **दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** में प्रो० हार्नले द्वारा प्रकाशित नन्दिसंघ की पट्टावली को प्रत्यक्ष नहीं देखा। उसमें तो कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध में और भी अधिक सुनिश्चित संवत् , वर्ष, मास और दिन का उल्लेख है। उसमें न केवल कुन्दकुन्द के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित होने का वर्ष विक्रम संवत् ४९ बतलाया गया है, अपितु गृहास्थाश्रम में रहने का समग्रकाल ११ वर्ष, सामान्यमुनि के रूप में रहने की वर्ष संख्या ३३, आचार्यपद पर प्रतिष्ठत रहने की कालावधि ५१ वर्ष, १० मास और १० दिन, व्यवधानकाल ५ दिन तथा सम्पूर्ण जीवन काल ९५ वर्ष, १० मास और १५ दिन बतलाया गया है। यतः वे ११ वर्ष गृहस्थाश्रम में और ३३ वर्ष सामान्य मुनि के पद पर रहने के बाद ४४ वर्ष की आयु में विक्रम सं० ४९ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे, अतः उनका जन्मवर्ष विक्रम सं० ५ अर्थात् ईसापूर्व का ५२ वाँ संवत्सर सुनिश्चित होता है। इस प्रकार कुन्दकुन्द के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त के एक-एक दिन का हिसाब क्या उक्त **प्रतिष्ठापाठ** नामक लघु पुस्तिका में है? नहीं है। अतः आचार्य हस्तीमल जी

ने उक्त प्रतिष्ठापाठ के विषय में जो यह दावा किया है कि इस प्रकार का निश्चित संवत् का उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द के सम्बन्ध में जैनवाङ्मय में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता, सर्वथा मिथ्या है।

अतः यदि निश्चित संवत् के उल्लेख को पट्टावली आदि की प्रामाणिकता का हेतु माना जाय तो **दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** में निर्दिष्ट पट्टावली सर्वाधिक प्रामाणिक सिद्ध होती है और इस तर्क से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्व ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में था।

३. इसी अध्याय के प्रथम प्रकरण में कुन्दकुन्द के ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में होने के जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे उनका वि० सं० ७७० में होना निरस्त हो जाता है।

४. उक्त **प्रतिष्ठापाठ** (१८८३ ई०) की अपेक्षा **दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** में प्रकाशित पट्टावली (१७८३ ई०) तथा **शुभचन्दकृत गुर्वावली** (प्रो० ए० एन० उपाध्ये के अनुसार १५१६-१५५६ ई०) अधिक प्राचीन हैं। अतः **प्रतिष्ठापाठ** की अपेक्षा ये अधिक विश्व-सनीय हैं। इनमें कुन्दकुन्द को उमास्वाति का पूर्ववर्ती बतलाया गया है, जिससे उनका वि० सं० ७७० में होना असिद्ध हो जाता है।

५. वि० सं० ७७० में न तो नन्दिसंघ का अस्तित्व था, न सरस्वतीगच्छ का, न बलात्कारगण का। बलात्कारगण तथा सरस्वतीगच्छ की उत्पत्ति १० वीं शताब्दी ई० में, एवं नन्दिसंघ का आविर्भाव १२ वीं शती ई० में हुआ था, यह अष्टम अध्याय के तृतीय प्रकरण में सिद्ध किया जा चुका है। अतः वि० सं० ७७० ई० में इन नामोंवाले संघ, गच्छ और गण में कुन्दकुन्द के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित होने का उल्लेख सिद्ध करता है कि **प्रतिष्ठापाठ** में उल्लिखित काल मनगढ़न्त है।

६. गिरनार पर्वत पर सरस्वती की पाषाणप्रतिमा से 'दिगम्बरमत प्राचीन है, श्वेताम्बरमत अर्वाचीन' यह कहलवाने का कार्य १४ वीं शताब्दी ई० में पद्मनन्दी नामक भट्टारक ने किया था। यह पूर्व में सप्रमाण दर्शाया जा चुका है। आचार्य कुन्दकुन्द का भी एक नाम पद्मनन्दी था। अतः नामसाम्य के कारण भट्टारक पद्मनन्दी को भ्रान्तिवश कुन्दकुन्द समझकर उनके साथ यह घटना जोड़ दी गयी। किन्तु दोनों का अस्तित्व वि० सं० ७७० अथवा उसके लगभग नहीं था, अतः भट्टारक पद्मनन्दी के साथ भी वि० सं० ७७० में उक्त घटना का जोड़ा जाना 'प्रतिष्ठापाठ' की कथा को कथंचित् बनावटी सिद्ध करता है, कुन्दकुन्द के साथ जोड़े जाने से तो उसका शतप्रतिशत बनावटी होना सिद्ध होता है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७. **प्रतिष्ठापाठ** की कुन्दकुन्दकथा में कुन्दकुन्द के द्वारा जिन षट्कर्मों का चलाया जाना बतलाया गया है, उनका उल्लेख कुन्दकुन्द के किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। उक्त कथा में कुन्दकुन्द के द्वारा षट्कर्मों को चलाये जाने का कथन तो किया गया है, किन्तु उन्होंने समयसारादि में अध्यात्मतत्त्व का सर्वप्रथम निरूपण किया है, इसकी रंचमात्र भी चर्चा नहीं की गयी। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थों में से एक के भी नाम का उल्लेख नहीं किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि पण्डित महिपाल भट्टारक थे, अतः उन्होंने ब्राह्मणों से गृहीत अपनी आगमविरुद्ध क्रियाओं को आगमसम्मत सिद्ध करने के लिए कुन्दकुन्द जैसे परम आगमनिष्ठ एवं अध्यात्मपुरुष दिगम्बराचार्य द्वारा प्रवर्तित किये जाने का कपटपूर्ण प्रचार किया है।

८. **वारानगर** में एक अन्य पद्मनन्दी नामक आचार्य (ई० सन् ९७७-१०४३) थे, जिन्होंने वहाँ रहकर **जंबुदीवपण्णत्ती** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनका परिचय देते हुए पं० नाथूराम जी प्रेमी लिखते हैं—

"**पद्मनन्दी** जिस समय **वारानगर** में थे, उस समय यह ग्रन्थ रचा गया है। इस नगर की प्रशंसा में लिखा है कि उसमें वापिकायें, तालाब, और भवन बहुत थे, भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों से वह भरा हुआ था, बहुत ही रम्य था, धनधान्य से परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टिजनों से, मुनियों के समूह से और जैन मंदिरों से विभूषित था। यह नगर **पारियत्त** (पारियात्र) नामक देश के अन्तर्गत था। वारानगर के प्रभु या राजा का नाम **शाक्ति** या **शक्तिकुमार** था। वह सम्यग्दर्शनशुद्ध, व्रती, शीलसम्पन्न, दानी, जिनशासनवत्सल, वीर, गुणी, कलाकुशल और नरपतिसम्पूजित था।

"**हेमचन्द्र** ने अपने कोश में लिखा है-'**उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्रः**' अर्थात् विन्ध्याचल के उत्तर में पारियात्र है। यह पारियात्र शब्द पर्वतवाची और प्रदेशवाची भी है। विन्ध्याचल की पर्वतमाला का पश्चिम भाग जो नर्मदातट से शुरू होकर खंभात तक जाता है और उत्तरभाग जो अर्बली की पर्वतश्रेणी तक गया है, पारियात्र कहलाता है। अतः पूर्वोक्त बारानगर इसी भूभाग के अन्तर्गत होना चाहिए। राजपूताने के कोटा राज्य में जो बारा नाम का कसबा है, वही बारानगर है, क्योंकि वह पारियात्रदेश की सीमा के भीतर ही आता है। नन्दिसंघ की पट्टावली[१२०] के अनुसार बारा में एक भट्टारकों की गद्दी भी रही है और उसमें वि० सं० ११४४ से १२०६ तक के १२ भट्टारकों के नाम दिये हैं। इससे भी जान पड़ता है कि सम्भवतः ये सब पद्मनन्दी या माघनन्दी की ही शिष्यपरम्परा में हुए होंगे और यही बारा (कोटा) **जम्बूदीपप्रज्ञप्ति** के निर्मित होने का स्थान होगा।

---

१२० "देखो, जैनसिद्धांतभास्कर / किरण ४ और इंडियन ऐण्टिक्वेरी २० वीं जिल्द।" लेखक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"**ज्ञानप्रबोध** नामक पद्यबद्ध भाषाग्रन्थ में कुन्दकुन्दाचार्य की एक कथा दी है। उसमें कुन्दकुन्द को इसी बारापुर या बारा के धनी कुन्दश्रेष्ठी और कुन्दलता का पुत्र बतलाया है। पाठक जानते हैं कि कुन्दकुन्द का एक नाम पद्मनन्दी भी है। जान पड़ता है कि **जम्बूदीपप्रज्ञप्ति** के कर्त्ता पद्मनन्दी को ही भ्रमवश कुन्दकुन्द समझकर **ज्ञानप्रबोध** के कर्त्ता ने कुन्दकुन्द का जन्मस्थान कर्नाटक के कोण्डकुण्डपुर के बदले बारा[१२१] बतला दिया है। कुन्दकुन्द नाम की उपपत्ति बिठाने के लिए कुन्दलता और कुन्दश्रेष्ठी की कल्पना भी उन्हीं के उर्वर मस्तिष्क की उपज है, जैसे उमा माता और स्वाति पिता की सन्तान उमास्वाति।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.२५८-२५९)।

इस प्रकार उक्त प्रतिष्ठापाठ की कुन्दकुन्दकथा में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के कर्त्ता पद्मनन्दी को कुन्दकुन्दाचार्य मान लेने के कारण भी उनका अस्तित्व वि० सं० ७७० में बतलाया जाना मिथ्या सिद्ध होता है।

---

१२१. "सुना है कि वारा में पद्मनन्दी की एक निषिद्या भी है।" लेखक।

✧✧✧

चतुर्थ प्रकरण

मालवणिया जी के दार्शनिक विकासवाद का निरसन

१

मालवणिया जी की तीन अवधारणाएँ

पं० दलसुख जी मालवणिया ने स्वकल्पित दार्शनिक-विकासवाद के आधार पर कुन्दकुन्द को उमास्वाति (तीसरी-चौथी शताब्दी ई०) के बाद का आचार्य बतलाया है। वे न्यायावतारवार्तिकवृत्ति की प्रस्तावना में लिखते हैं—

"वाचक उमास्वाति का समय पं० श्री सुखलाल जी ने **तीसरी-चौथी शताब्दी** होने का अंदाज किया है। आ० **कुन्दकुन्द** के समय में अभी विद्वानों का एकमत नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द का समय जो भी माना जाय, किन्तु **तत्त्वार्थ** और आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थगत दार्शनिक विकास की ओर यदि ध्यान दिया जाय तो वा० **उमास्वाति** के तत्त्वार्थगत जैनदर्शन की अपेक्षा आ० **कुन्दकुन्द** के ग्रन्थगत जैनदर्शन का रूप विकसित है, यह किसी भी दार्शनिक से छिपा नहीं रह सकता। अत एव दोनों के समयविचार में इस पहलू को भी यथायोग्य स्थान अवश्य देना चाहिए। इसके प्रकाश में यदि दूसरे प्रमाणों का विचार किया जायगा, तो संभव है दोनों के समय का निर्णय सहज में हो सकेगा।" (न्या.वा.वृ. / प्रस्ता. / पृ.१०३)।

पश्चात् माननीय मालवणिया जी ने '**क्या बोटिक दिगम्बर हैं?**' नामक लेख में लिखा है—"**बोटिक** मूलतः दिगम्बर नहीं थे, क्योंकि स्त्रीमुक्ति के निषेध की चर्चा हमें सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द में मिलती है। यद्यपि उनका समय विवादास्पद है, फिर भी मेरा अपना यह निश्चित मत है कि आचार्य कुन्दकुन्द आचार्य उमास्वाति के पूर्व नहीं हुए हैं। इसको सिद्ध करने का प्रयत्न मैंने अपनी **न्यायावतारवार्तिकवृत्ति** की प्रस्तावना में दोनों आचार्यों के जैन दर्शन-सम्बन्धी मन्तव्यों की तुलना करके किया है। इस समग्र चर्चा से दो फलित निकलते हैं—प्रथम तो यह कि श्वेताम्बरग्रन्थों में बोटिक नाम से जिस सम्प्रदाय का उल्लेख हुआ है, वह दिगम्बर-सम्प्रदाय से भिन्न है और जिसे अन्यत्र यापनीय के नाम से पहचाना जाता है। दूसरे, दिगम्बर-सम्प्रदाय जो स्त्रीमुक्ति का निषेध करता है, वह या तो बोटिकों का ही परवर्ती विकास है, या फिर उससे प्रारंभिक श्वेताम्बराचार्य परिचित नहीं थे। क्योंकि प्राचीन निर्युक्तियों एवं भाष्यों से ऐसी मान्यता की उपस्थिति के न तो कोई संकेत ही मिलते हैं और न उसके खण्डन का ही कोई प्रयास देखा जाता है।"[१२२]

१२२. जैन विद्या के आयाम / ग्रन्थाङ्क २ (Aspect of Jainology, Vol. II) 'पं. बेचरदास दोशी स्मृति ग्रन्थ' / पृष्ठ ७३।

मालवणिया जी ने **न्यायावतारवार्तिकवृत्ति** की प्रस्तावना (पृ.११८) में यह भी लिखा है कि "**वाचक उमास्वाति** के **तत्त्वार्थ** की रचना का प्रयोजन मुख्यतः संस्कृत भाषा में सूत्रशैली के ग्रन्थ की आवश्यकता की पूर्ति करना था। तब आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की रचना का प्रयोजन कुछ दूसरा ही था। उनके सामने तो एक महान् ध्येय था। दिगम्बर-सम्प्रदाय की उपलब्ध जैन आगमों के प्रति अरुचि बढ़ती जा रही थी। किन्तु जब तक ऐसा ही दूसरा साधन आध्यात्मिक भूख को मिटानेवाला उपस्थित न हो, तब तक प्राचीन जैन आगमों का सर्वथा त्याग संभव न था। आगमों का त्याग कई कारणों से करना आवश्यक हो गया था,[१२३] किन्तु दूसरे प्रबल समर्थ साधन के अभाव में वह पूर्णरूप से शक्य न था। इसी को लक्ष्य में रखकर आ० कुन्दकुन्द ने दिगम्बर-सम्प्रदाय की आध्यात्मिक भूख की माँग के लिए अपने अनेक ग्रन्थों की प्राकृत भाषा में रचना की।" (न्या.वा.वृ. / प्रस्ता. / पृ.११८)।

मालवणिया जी के इस कथन से ऐसा प्रतीत तो नहीं होता कि उनके अनुसार दिगम्बर-सम्प्रदाय की स्थापना कुन्दकुन्द ने की थी, भले ही स्त्रीमुक्तिनिषेध आदि दिगम्बरीय मान्यताओं का उल्लेख उनके ग्रन्थों में सर्वप्रथम मिलता हो। किन्तु यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर-सम्प्रदाय को बोटिक-सम्प्रदाय का विकसित रूप मानते हैं। अर्थात् विकसित होने के लिए यदि अधिक से अधिक पचास वर्ष का समय आवश्यक माना जाय (निर्ग्रन्थसंघ से श्वेताम्बर-सम्प्रदाय का विकास वीरनिर्वाण से ६२ वर्ष बाद ही हो गया था), तो मालवणिया जी के अनुसार दिगम्बर-सम्प्रदाय की उत्पत्ति बोटिक-सम्प्रदाय की उत्पत्ति (वीरनिर्वाण सं० ६०९ = ई० ८२) से लगभग पचास वर्ष बाद (द्वितीय शती ई० में) मानी जा सकती है।

मालवणिया जी ने अपने उपर्युक्त वक्तव्य (न्या.वा.वृ. / प्रस्ता. / पृ.११८) में यह मन्तव्य प्रकट किया है कि "दिगम्बर-सम्प्रदाय की उपलब्ध जैन आगमों के प्रति अरुचि बढ़ती जा रही थी, क्योंकि उनमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिकवलाहार, आपवादिक मांसाशन आदि के उल्लेख थे, जो दिगम्बर-सम्प्रदाय के अनुकूल न थे,[१२३] इसलिए कुन्दकुन्द ने सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि का निषेध करनेवाले दिगम्बरमत-प्रतिपादक ग्रन्थों की रचना की।" इससे यह सूचित होता है कि सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि मान्यताओं के प्रति अरुचि रखनेवाला दिगम्बर-सम्प्रदाय कुन्दकुन्द के बहुत पहले अस्तित्व में आ गया था और वह कुन्दकुन्द के पूर्व इतने दीर्घ समय तक अस्तित्व

---

१२३. "खासकर वस्त्रधारण, केवली-कवलाहार, स्त्रीमुक्ति, आपवादिक मांसाशन इत्यादि के उल्लेख जैन आगमों में थे, जो दिगम्बरसम्प्रदाय के अनुकूल न थे।" न्यायावतारवार्तिकवृत्ति/ प्रस्तावना / पादटिप्पणी / पृष्ठ ११८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में रहा कि उसकी अरुचि को निरन्तर बढ़ते जाने का अवसर मिल सका। मालवणिया जी के इस मन्तव्य से इस निर्णय को बल मिलता है कि उनके मतानुसार बोटिकमत से दिगम्बरमत के विकसित होने का काल ईसा की द्वितीय शताब्दी माना जा सकता है।

श्री मालवणिया जी के इन वक्तव्यों से उनके द्वारा पोषित तीन अवधारणाओं का पता चलता है—पहली तो यह कि दिगम्बर-जैन-सम्प्रदाय बोटिक-सम्प्रदाय का विकसितरूप है और उसकी उत्पत्ति ईसा की द्वितीय शताब्दी में मानी जा सकती है। दूसरी यह कि दिगम्बरमत-प्रतिपादक ग्रन्थों के आद्य प्रणेता आचार्य कुन्दकुन्द हैं। उनके पूर्व दिगम्बर-सम्प्रदाय श्वेताम्बर-आगमों को अरुचिपूर्वक मानता था। तीसरी यह कि कुन्दकुन्द उमास्वाति के बाद अर्थात् ईसा की तीसरी-चौथी शती के पश्चात् हुए थे। मान्य विद्वान् की इन तीन अवधारणाओं में से प्रथम अवधारणा की मिथ्यारूपता का प्रकाशन पूर्व अध्यायों में किया जा चुका है। यथा—

१. द्वितीय अध्याय में अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों और अनेक आधुनिक श्वेताम्बर विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में स्त्रीमुक्ति-निषेधक दिगम्बरों को ही बोटिक कहा है, यापनीयों को नहीं। तथा बोटिक शिवभूति की मान्यताओं से भी सिद्ध होता है कि उसने यापनीयमत का प्रवर्तन नहीं किया था, अपितु श्वेताम्बरमत छोड़कर परम्परागत दिगम्बरमत का वरण किया था। इस प्रकार दिगम्बर-सम्प्रदाय से भिन्न किसी बोटिक-सम्प्रदाय का अस्तित्व ही मिथ्या सिद्ध हो जाता है, अतः उससे दिगम्बरसम्प्रदाय के विकसित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैनेतर साहित्य एवं पुरातात्त्विक प्रमाणों से सिद्ध किया जा चुका है कि ऐतिहासिक दृष्टि से दिगम्बरजैनमत सिन्धुसभ्यता से भी प्राचीन है।

२. बोटिक-सम्प्रदाय को यापनीय-सम्प्रदाय मानकर उससे दिगम्बर-सम्प्रदाय के विकसित होने की कल्पना मुनि कल्याणविजय जी ने की है, उसका अनौचित्य द्वितीय अध्याय में प्रदर्शित किया जा चुका है।

३. द्वितीय अध्याय में यह भी निरूपित किया गया है कि आवश्यकनिर्युक्ति और विशेषावश्यकभाष्य में बोटिक-सम्प्रदाय के नाम से दिगम्बर-सम्प्रदाय की चर्चा की गई है और दिगम्बरीय सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। तृतीय अध्याय में बतलाया गया है कि दशवैकालिकसूत्र में आचार्य शय्यम्भव ने **'जं पि वत्थं वा पायं वा'** आदि गाथाओं में परिग्रह की दिगम्बरमान्य परिभाषा का निरसन किया है। अतः मालवणिया जी का यह कथन भी सत्य नहीं है कि प्राचीन निर्युक्तियों एवं भाष्यों

में दिगम्बरीय मान्यताओं की उपस्थिति के संकेत नहीं हैं अथवा उनके खण्डन का प्रयास दृष्टिगोचर नहीं होता।

तथा मालवणिया जी ने कुन्दकुन्द को दिगम्बरसाहित्य का आद्यकर्ता सिद्ध करने के लिए जो यह द्वितीय अवधारणा निर्मित की है कि कुन्दकुन्द के पूर्व तक दिगम्बरसम्प्रदाय के पास दिगम्बरमत के प्रतिपादक आगम नहीं थे, वह उपपन्न नहीं होती। क्योंकि प्रश्न उठता है कि यदि दिगम्बर-परम्परा के पास अपने आगम नहीं थे, तो उसने सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि के निषेध की मान्यताएँ कहाँ से ग्रहण की थीं, जिनके कारण उसकी सवस्त्रमुक्ति के प्रति अरुचि बढ़ती जा रही थी? आगमों का लिखित होना जरूरी नहीं है, वे श्रुतिपरम्परागत भी होते हैं और पहले वे श्रुतिपरम्परागत ही थे।[१२४]अथवा यदि दिगम्बरपरम्परा के पास दिगम्बरत्व-प्रतिपादक आगम नहीं थे, तो वह कौन सा प्रामाणिक आदिपुरुष था, जिसके उपदेश से दिगम्बरसम्प्रदाय के बहुसंख्यक अनुयायियों ने स्त्रीमुक्ति आदि को आगमविरुद्ध मान लिया था? मालवणिया जी की उक्त अवधारणा से इन प्रश्नों का समाधान नहीं होता, अतः वह युक्तियुक्त नहीं है। फलस्वरूप यह सिद्ध होता है कि कुन्दकुन्द के समय में दिगम्बर-सम्प्रदाय के पास भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट आगम उपलब्ध थे, जिनमें दिगम्बरमत का प्रतिपादन था। हाँ, यह अवश्य है कि कालप्रवाहवश बारह अंगों और चतुर्दशपूर्वों के ज्ञान का क्रमशः लोप होते-होते उन सबके एक-एकदेश का ही ज्ञान कुन्दकुन्द को उपलब्ध हो पाया था। **तिलोयपण्णत्ती**, **हरिवंशपुराण**, **धवला** इत्यादि में कहा गया है कि **लोहाचार्य** ऐसे अन्तिम आचार्य थे, जिन्हें आचारांग के सम्पूर्ण तथा शेष ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वों के एकदेश का ज्ञान था। उनके पश्चाद्वर्ती सभी आचार्यों को बारह अंगों और चौदह पूर्वों के एक-एक देश का ही ज्ञान प्राप्त था। उनमें **गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि** और **कुन्दकुन्द** शामिल हैं। उन्होंने उसी के आधार पर अपने ग्रन्थों की रचना की थी।[१२५]

---

१२४. "तदो सव्वेसिमंगपुव्वाणमेगदेसो आइरियपरंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।" धवलाटीका / पु.१ / १,१,१ / पृ. ६८।

१२५. क— "तदो सुभद्दो, जसभद्दो, जसबाहू, लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि वि आइरिया आयारंगधरा सेसंग-पुव्वाणमेगदेसधरा य। तदो सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेगदेसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।" धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.१ / १,१,१ / पृ.६७-६८।

ख—पूर्वाचार्येभ्य एतेभ्यः परेभ्यश्च वितन्वतः।
एकदेशागमस्यायमेकदेशोऽपदिश्यते॥ १ / ६६॥ हरिवंशपुराण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

माननीय मालवणिया जी की तीसरी अवधारणा यह है कि कुन्दकुन्द तीसरी-चौथी शती ई० में हुए उमास्वाति से परिवर्ती हैं, क्योंकि कुन्दकुन्दसाहित्य में वर्णित जैनदर्शन का स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित जैनदर्शन से विकसित है। अतः अब यह द्रष्टव्य है कि श्री मालवणिया जी ने तत्त्वार्थसूत्रगत जैनदर्शन की अपेक्षा कुन्दकुन्द-साहित्यगत जैनदर्शन के रूप को किन हेतुओं के आधार पर विकसित माना है? वे हेतु द्विविध हैं—१. कुन्दकुन्दसाहित्य में उन मतों की उपलब्धि होना, जिन्हें मालवणिया जी ने जैनेतर दर्शनों से अनुकृत माना है और २. प्रतिपाद्य विषय की विविधता तथा व्याख्या-दृष्टान्तादि-कृत विस्तार पाया जाना। यहाँ पहले प्रथम-हेतुभूत उन मतों को, जिन्हें मालवणिया जी ने जैनेतर दर्शनों से अनुकृत बतलाया है, उद्धृत कर यह सिद्ध किया जा रहा है कि वे जैनेतरदर्शनों से अनुकृत नहीं, अपितु जिनोपदिष्ट ही हैं।

२
कुन्दकुन्दसाहित्य में जैनेतर दर्शनों का अनुकरण नहीं

२.१. कुन्दकुन्द द्वैताद्वैत के रूप में द्वैतवाद के ही प्रतिपादक

मालवणिया जी का मत

माननीय मालवणिया जी ने यह मत गढ़ा है कि कुन्दकुन्द ने **ब्रह्माद्वैत** और **विज्ञानाद्वैत** का अनुकरण कर जैनदर्शन को **अद्वैतवाद** के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। वे लिखते हैं—

"आचार्य कुन्दकुन्द का श्रेष्ठ ग्रन्थ समयसार है। उसमें उन्होंने तत्त्वों का विवेचन नैश्चयिक दृष्टि का अवलम्बन लेकर किया है। खास उद्देश्य तो है आत्मा के निरुपाधिक शुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन, किन्तु उसी के लिए अन्य तत्त्वों का भी पारमार्थिक रूप बताने का आचार्य ने प्रयत्न किया है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन करते हुए आचार्य ने कहा है कि व्यवहारदृष्टि के आश्रय से यद्यपि आत्मा और उसके ज्ञानादि गुणों में तथा ज्ञानादिगुणों में पारस्परिक भेद का प्रतिपादन किया जाता है, फिर भी निश्चयदृष्टि से इतना ही कहना पर्याप्त है कि जो ज्ञाता है, वही आत्मा है या आत्मा ज्ञायक है, अन्य कुछ नहीं। (समयसार / ६-७)। इस प्रकार आचार्य की अभेदगामिनी दृष्टि ने आत्मा के सभी गुणों का अभेद ज्ञानगुण में कर दिया है --- इतना ही नहीं, किन्तु द्रव्य और गुण में अर्थात् ज्ञान और ज्ञानी में भी कोई भेद नहीं है, ऐसा प्रतिपादन किया है। --- आचार्य कुन्दकुन्द की अभेददृष्टि को इतने से भी सन्तोष नहीं हुआ। उनके सामने **विज्ञानाद्वैत** तथा **आत्माद्वैत** का आदर्श भी था। विज्ञानाद्वैतवादियों का कहना है कि ज्ञान में ज्ञानातिरिक्त बाह्य पदार्थों का प्रतिभास नहीं होता, स्व का

ही प्रतिभास होता है। ब्रह्माद्वैत का भी यही अभिप्राय है कि संसार में ब्रह्मातिरिक्त कुछ भी नहीं है, अत एव सभी प्रतिभासों में ब्रह्म ही प्रतिभासित होता है। इन दोनों मतों के समन्वय की दृष्टि से आचार्य ने कह दिया कि निश्चयदृष्टि से केवलज्ञानी आत्मा को ही जानता है, बाह्य पदार्थों को नहीं (नि.सा./१५९)। **ऐसा कह करके तो आचार्य ने जैनदर्शन और अद्वैतवाद का अन्तर बहुत कम कर दिया है और जैनदर्शन को अद्वैतवाद के निकट रख दिया है।**'' (न्या.वा.वृ./प्रस्ता./पृ.१३४-१३५)।

यही मनगढ़न्त मत मालवणिया जी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—''आचार्य कुन्दकुन्द के समय में अद्वैतवादों की बाढ़ सी आ गई थी। औपनिषद् **ब्रह्माद्वैत** के अतिरिक्त **शून्याद्वैत** और **विज्ञानाद्वैत** जैसे वाद भी दार्शनिकों में प्रतिष्ठित हो चुके थे। तार्किक और श्रद्धालु दोनों के ऊपर उन अद्वैतवादों का प्रभाव सहज ही में जम जाता था। अत एव ऐसे विरोधी वादों के बीच जैनों के **द्वैतवाद** की रक्षा करना कठिन था। **इसी आवश्यकता में से आ० कुन्दकुन्द के निश्चयप्रधान अध्यात्मवाद का जन्म हुआ है।** जैन आगमों में निश्चयनय प्रसिद्ध था ही और निक्षेपों में भावनिपेक्ष भी मौजूद था। भावनिक्षेप की प्रधानता से निश्चयनय का आश्रय लेकर जैनतत्त्वों के निरूपण द्वारा आ० कुन्दकुन्द ने जैनदर्शन को दार्शनिकों के सामने एक नये रूप में उपस्थित किया। ऐसा करने से **वेदान्त** का **अद्वैतानन्द** साधकों को और तत्त्वजिज्ञासुओं को जैनदर्शन में ही मिल गया। **निश्चयनय और भावनिक्षेप का आश्रय लेने पर द्रव्य और पर्याय, द्रव्य और गुण, धर्म और धर्मी, अवयव और अवयवी इत्यादि का भेद मिटकर अभेद हो जाता है। आ० कुन्दकुन्द को इसी अभेद का निरूपण परिस्थितिवश करना था, अतएव उनके ग्रन्थों में निश्चयप्रधान वर्णन हुआ है। और नैश्चयिक आत्मा के वर्णन में ब्रह्मवाद के समीप जैन आत्मवाद पहुँच गया है।** आ० कुन्दकुन्दकृत ग्रन्थों के अध्ययन के समय उनकी इस **निश्चय** और **भावनिक्षेपप्रधान दृष्टि** को सामने रखने से कई गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं और आ० कुन्दकुन्द का तात्पर्य सहज ही में प्राप्त हो सकता है''। (न्या.वा.वृ./प्रस्ता./पृ.११८-११९)।

निरसन

यह महान् आश्चर्य की बात है कि जैनदर्शन के इतने बड़े विद्वान् ने यह कैसे कह दिया कि कुन्दकुन्द ने जैनदर्शन को ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद के निकट लाकर खड़ा कर दिया है या उन्होंने आत्मा के निश्चयनयात्मक प्रतिपादन से जैनदर्शन और अद्वैतवाद का अन्तर बहुत कम कर दिया है! **कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित द्रव्य-गुण-पर्याय के या आत्मा और उसके ज्ञानादि गुणों के निश्चयनयात्मक (सत्तागत) अद्वैत (अभेद) और वेदान्तदर्शन के ब्रह्माद्वैत या आत्माद्वैत में आकाश-पाताल का अन्तर है।** अद्वैतवेदान्त में सत् या द्रव्य एक ही माना गया है और वह है एक अकेला

माननीय मालवणिया जी की तीसरी अवधारणा यह है कि कुन्दकुन्द तीसरी-चौथी शती ई० में हुए उमास्वाति से परिवर्ती हैं, क्योंकि कुन्दकुन्दसाहित्य में वर्णित जैनदर्शन का स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित जैनदर्शन से विकसित है। अतः अब यह द्रष्टव्य है कि श्री मालवणिया जी ने तत्त्वार्थसूत्रगत जैनदर्शन की अपेक्षा कुन्दकुन्द-साहित्यगत जैनदर्शन के रूप को किन हेतुओं के आधार पर विकसित माना है? वे हेतु द्विविध हैं—१. कुन्दकुन्दसाहित्य में उन मतों की उपलब्धि होना, जिन्हें मालवणिया जी ने जैनेतर दर्शनों से अनुकृत माना है और २. प्रतिपाद्य विषय की विविधता तथा व्याख्या-दृष्टान्तादि-कृत विस्तार पाया जाना। यहाँ पहले प्रथम-हेतुभूत उन मतों को, जिन्हें मालवणिया जी ने जैनेतर दर्शनों से अनुकृत बतलाया है, उद्धृत कर यह सिद्ध किया जा रहा है कि वे जैनेतरदर्शनों से अनुकृत नहीं, अपितु जिनोपदिष्ट ही हैं।

२
कुन्दकुन्दसाहित्य में जैनेतर दर्शनों का अनुकरण नहीं

२.१. कुन्दकुन्द द्वैताद्वैत के रूप में द्वैतवाद के ही प्रतिपादक

मालवणिया जी का मत

माननीय मालवणिया जी ने यह मत गढ़ा है कि कुन्दकुन्द ने **ब्रह्माद्वैत** और **विज्ञानाद्वैत** का अनुकरण कर जैनदर्शन को **अद्वैतवाद** के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। वे लिखते हैं—

"आचार्य कुन्दकुन्द का श्रेष्ठ ग्रन्थ समयसार है। उसमें उन्होंने तत्त्वों का विवेचन नैश्चयिक दृष्टि का अवलम्बन लेकर किया है। खास उद्देश्य तो है आत्मा के निरुपाधिक शुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन, किन्तु उसी के लिए अन्य तत्त्वों का भी पारमार्थिक रूप बताने का आचार्य ने प्रयत्न किया है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन करते हुए आचार्य ने कहा है कि व्यवहारदृष्टि के आश्रय से यद्यपि आत्मा और उसके ज्ञानादि गुणों में तथा ज्ञानादिगुणों में पारस्परिक भेद का प्रतिपादन किया जाता है, फिर भी निश्चयदृष्टि से इतना ही कहना पर्याप्त है कि जो ज्ञाता है, वही आत्मा है या आत्मा ज्ञायक है, अन्य कुछ नहीं। (समयसार / ६-७)। इस प्रकार आचार्य की अभेदगामिनी दृष्टि ने आत्मा के सभी गुणों का अभेद ज्ञानगुण में कर दिया है --- इतना ही नहीं, किन्तु द्रव्य और गुण में अर्थात् ज्ञान और ज्ञानी में भी कोई भेद नहीं है, ऐसा प्रतिपादन किया है। --- आचार्य कुन्दकुन्द की अभेददृष्टि को इतने से भी सन्तोष नहीं हुआ। उनके सामने **विज्ञानाद्वैत** तथा **आत्माद्वैत** का आदर्श भी था। विज्ञानाद्वैतवादियों का कहना है कि ज्ञान में ज्ञानातिरिक्त बाह्य पदार्थों का प्रतिभास नहीं होता, स्व का

ही प्रतिभास होता है। ब्रह्माद्वैत का भी यही अभिप्राय है कि संसार में ब्रह्मातिरिक्त कुछ भी नहीं है, अत एव सभी प्रतिभासों में ब्रह्म ही प्रतिभासित होता है। इन दोनों मतों के समन्वय की दृष्टि से आचार्य ने कह दिया कि निश्चयदृष्टि से केवलज्ञानी आत्मा को ही जानता है, बाह्य पदार्थों को नहीं (नि.सा./१५९)। **ऐसा कह करके तो आचार्य ने जैनदर्शन और अद्वैतवाद का अन्तर बहुत कम कर दिया है और जैनदर्शन को अद्वैतवाद के निकट रख दिया है।**'' (न्या.वा.वृ./प्रस्ता./पृ.१३४-१३५)।

यही मनगढ़न्त मत मालवणिया जी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—''आचार्य कुन्दकुन्द के समय में अद्वैतवादों की बाढ़ सी आ गई थी। औपनिषद् **ब्रह्माद्वैत** के अतिरिक्त **शून्याद्वैत** और **विज्ञानाद्वैत** जैसे वाद भी दार्शनिकों में प्रतिष्ठित हो चुके थे। तार्किक और श्रद्धालु दोनों के ऊपर उन अद्वैतवादों का प्रभाव सहज ही में जम जाता था। अत एव ऐसे विरोधी वादों के बीच जैनों के **द्वैतवाद** की रक्षा करना कठिन था। **इसी आवश्यकता में से आ० कुन्दकुन्द के निश्चयप्रधान अध्यात्मवाद का जन्म हुआ है।** जैन आगमों में निश्चयनय प्रसिद्ध था ही और निक्षेपों में भावनिपेक्ष भी मौजूद था। भावनिक्षेप की प्रधानता से निश्चयनय का आश्रय लेकर जैनतत्त्वों के निरूपण द्वारा आ० कुन्दकुन्द ने जैनदर्शन को दार्शनिकों के सामने एक नये रूप में उपस्थित किया। ऐसा करने से **वेदान्त** का **अद्वैतानन्द** साधकों को और तत्त्वजिज्ञासुओं को जैनदर्शन में ही मिल गया। **निश्चयनय और भावनिक्षेप का आश्रय लेने पर द्रव्य और पर्याय, द्रव्य और गुण, धर्म और धर्मी, अवयव और अवयवी इत्यादि का भेद मिटकर अभेद हो जाता है। आ० कुन्दकुन्द को इसी अभेद का निरूपण परिस्थितिवश करना था, अतएव उनके ग्रन्थों में निश्चयप्रधान वर्णन हुआ है। और नैश्चयिक आत्मा के वर्णन में ब्रह्मवाद के समीप जैन आत्मवाद पहुँच गया है।** आ० कुन्दकुन्दकृत ग्रन्थों के अध्ययन के समय उनकी इस **निश्चय** और **भावनिक्षेपप्रधान दृष्टि** को सामने रखने से कई गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं और आ० कुन्दकुन्द का तात्पर्य सहज ही में प्राप्त हो सकता है''। (न्या.वा.वृ./प्रस्ता./पृ.११८-११९)।

निरसन

यह महान् आश्चर्य की बात है कि जैनदर्शन के इतने बड़े विद्वान् ने यह कैसे कह दिया कि कुन्दकुन्द ने जैनदर्शन को ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद के निकट लाकर खड़ा कर दिया है या उन्होंने आत्मा के निश्चयनयात्मक प्रतिपादन से जैनदर्शन और अद्वैतवाद का अन्तर बहुत कम कर दिया है! **कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित द्रव्य-गुण-पर्याय के या आत्मा और उसके ज्ञानादि गुणों के निश्चयनयात्मक (सत्तागत) अद्वैत (अभेद) और वेदान्तदर्शन के ब्रह्माद्वैत या आत्माद्वैत में आकाश-पाताल का अन्तर है।** अद्वैतवेदान्त में सत् या द्रव्य एक ही माना गया है और वह है एक अकेला

ब्रह्म। अर्थात् सम्पूर्ण लोकालोक या ब्रह्माण्ड में एक ही आत्मा व्याप्त है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी आत्मा या जड़ द्रव्य का अस्तित्व नहीं है। लोक में जो ये अनेक जीव और जड़ पदार्थ दिखाई देते हैं, वे सत्य नहीं हैं, अपितु जैसे अँधेरे में रज्जु में सर्प का अध्यास (भ्रम) होता है, वैसे ही अविद्या या माया के कारण उस एक अकेले ब्रह्म में अनेक जीवों और जड़ पदार्थों का अध्यास (भ्रम) होता है। इसी प्रकार उस एकमात्र सत् या द्रव्यभूत ब्रह्म में ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुणों का भी सद्भाव नहीं है तथा वह कूटस्थनित्य है अर्थात् उसमें परिणमन भी नहीं होता, जिससे वह पर्यायरहित भी है। ब्रह्माद्वैतवाद का यह स्वरूप है। वेदों, उपनिषदों और वेदान्तग्रन्थों में उसका यही रूप वर्णित है। यथा—

१. **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** (ऋग्वेद / १ / १६४ / ४६) = सत् या द्रव्य एक ही है, ज्ञानी उसका अनेकरूपों में वर्णन करते हैं।

२. **'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'** (छान्दोग्योपनिषत् ६ / २ / १) = हे सोम्य! जो यह नानारूपात्मक जगत् दिखाई देता है, वह उत्पत्ति के पूर्व सत्, अखण्ड (निरवयव) और अद्वितीय ही था।

३. **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छान्दो. / ३ / १४ / १) = यह सम्पूर्ण चराचर जगत् एकमात्र ब्रह्म ही है।

४. **'आत्मैवेदं सर्वम्'** (छान्दो. / ७ / २५ / २) = यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आत्मा ही है।

५. **'ब्रह्मैवेदं विश्वम्'** (मुण्डकोपनिषत् / २/२/११) = यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है।

६. **'नेह नानास्ति किञ्चन'** (बृहदारण्यकोपनिषत् ४/ ४ / १९) = जगत् में एकत्व (अद्वैत) ही सत् है, नानात्व असत् है। **''असति नानात्वे, नानात्वमध्यारोपयत्यविद्यया --- अविद्याध्यारोपण-व्यतिरेकेण नास्ति परमार्थतो द्वैतमित्यर्थः'** (वही / शांकरभाष्य) = यतः नानात्व असत् है, इसलिए ब्रह्म अविद्या के द्वारा नानात्व का अध्यारोप करता है। अविद्या के द्वारा ही द्वैत का अध्यारोपण होता है, परमार्थतः द्वैत का अस्तित्व नहीं है।

७. **'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'** (बृहदा. २/५/१९) = ब्रह्म मायाओं के द्वारा अनेक-रूप धारण कर लेता है।

८. **''असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः। वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म। अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु''** (सदानन्दकृत वेदान्तसार) =

असर्पभूत रज्जु में सर्पारोप के समान वस्तु में अवस्तु का आरोप होना अध्यारोप है। सत्, चित्, आनन्द, अनन्त तथा अद्वितीय ब्रह्म वस्तु (सत्) है तथा अज्ञानादि सकल जड़ पदार्थों का समूह अवस्तु (असत्) है।

इन सूत्रों में एक मात्र ब्रह्म या आत्मतत्त्व को ही सत् या सत्य कहा गया है तथा उसकी संख्या भी एक ही बतलायी गयी है, शेष समस्त पुद्गलादि द्रव्यों के अस्तित्व को अस्वीकार कर उनकी प्रतीति को अविद्याजनित या मायाजन्य भ्रम कहा गया है।

निम्नलिखित निरूपणों में ब्रह्म या आत्मा में गुणपर्यायरूप अनेकात्मकता का भी निषेध किया गया है—

९. "**नन्वनेकात्मकं ब्रह्म। यथा वृक्षोऽनेकशाख एवमनेकशक्तिप्रवृत्तियुक्तं ब्रह्म। अत एकत्वं नानात्वं चोभयमपि सत्यमेव। यथा वृक्ष इत्येकत्वं शाखा इति नानात्वम्। यथा च समुद्रात्मनैकत्वं फेनतरङ्गाद्यात्मना नानात्वम्। यथा च मृदात्मनैकत्वं घटशरावाद्यात्मना नानात्वम्। --- एवं च मृदादिदृष्टान्ता अनुरूपा भविष्यन्तीति।**[१२६] **नैवं स्यात्। 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति प्रकृतिमात्रस्य दृष्टान्ते सत्यत्वावधारणात्। वाचारम्भणशब्देन च विकारजातस्यानृतत्वाभिधानात्। दार्ष्टान्तिकेऽपि 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम्' इति च परमकारणस्यैवैकस्य सत्यत्वावधारणात्।**" (ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य / अध्याय २ / पाद १ / अधिकरण ६ / सूत्र १४)।

अनुवाद—"शंकाकार कहता है—ब्रह्म तो अनेकात्मक है। जैसे वृक्ष अनेक शाखाओं से युक्त होता है, वैसे ही ब्रह्म अनेक शक्तियों और प्रवृत्तियों से युक्त होता है, इसलिए एकत्व और नानात्व दोनों सत्य हैं। यथा, वृक्ष की अपेक्षा एकत्व सत्य है, शाखाओं की अपेक्षा नानात्व। समुद्ररूप से एकत्व वास्तविक है, फेनतरंगादिरूप से अनेकत्व। मृत्तिकारूप से एकत्व यथार्थ है और घट-शरावादि-रूप से अनेकत्व। ऐसा होने पर ही मृत्तिका आदि के दृष्टान्त घटित होंगे।

समाधान— ऐसा नहीं है। दृष्टान्त में **'मिट्टी ही सत्य है'** इस वचन से प्रकृति

---

१२६. "एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय दृष्टान्तापेक्षायामुच्यते-'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' (छान्दो.६ / १ / ४) इति। एतदुक्तं भवति एकेन मृत्पिण्डेन परमार्थतो मृदात्मना विज्ञातेन सर्वं मृन्मयं घटशरावोदञ्चनादिकं मृदात्मकत्वाविशेषाद्विज्ञातं भवेत्। यतो वाचारम्भणं विकारो नामधेयं वाचैव केवलमस्तीत्यारभ्यते। विकारो घटः शराव उदञ्चनं चेति न तु वस्तुवृत्तेन विकारो नाम कश्चिदस्ति। नामधेयमात्रं ह्येतदनृतं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति। एष ब्रह्मणो दृष्टान्त आम्नातः।" (ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य / अध्याय २ / पाद १ / अधिकरण ६ / सूत्र १४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(कारण) की ही सत्यता का अवधारण किया गया है। **वाचारम्भण** शब्द से घट, शराव आदि विकार समूह की असत्यता बतलायी गयी है। अर्थात् घट, शराव आदि नामों का ही अस्तित्व होता है, घट, शराव आदि वस्तुओं का नहीं। वस्तुदृष्टि से केवल मिट्टी की सत्ता होती है। इसी प्रकार **'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम्'** (यह सम्पूर्ण जगत् इस आत्मा से ही व्याप्त है, अतः वही सत्य है) इस दार्ष्टान्तिक में एकमात्र परमकारणभूत ब्रह्म की ही सत्यता का अवधारण किया गया है। अतः एकत्व (अद्वैत) ही सत्य है, नानात्व असत्य।"

इस तरह वेदान्तीय अद्वैतवाद में ब्रह्म में गुणपर्यायों के अस्तित्व को अस्वीकार कर उसकी स्वगत अनेकात्मकता का भी निषेध किया गया है।

वेदान्त में ब्रह्म को कूटस्थनित्य विशेषण दिया गया है, जो उसमें विक्रिया (परिणमन) के निषेध द्वारा पर्यायों के उत्पाद-व्यय का निषेधक है।[१२७]

इस प्रकार अद्वैतवेदान्तगत ब्रह्म के स्वरूप में गुणपर्यायों का अस्तित्व मान्य न होने से वहाँ गुणपर्यायरूप द्वैत नहीं है, अन्य ब्रह्म (आत्मा) का अस्तित्व स्वीकार्य न होने से सजातीय द्वैत नहीं है तथा पुद्गलादिरूप अचेतन पदार्थों की सत्ता इष्ट न होने से विजातीय द्वैत भी नहीं है। यही बात **पञ्चदशी** की निम्न कारिकाओं में कही गई है—

वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादिभिः।
वृक्षान्तरात् सजातीयो विजातीयः शिलादितः॥ २/२०॥

तथा सद्वस्तुनो भेदत्रयं प्राप्तं निवार्यते।
ऐक्यावधारणाद्वैत-प्रतिषेधैस्त्रिभिः क्रमात्॥ २/२१॥

अनुवाद—"जिस प्रकार वृक्ष का पत्रपुष्पफलादि की अपेक्षा स्वगत भेद होता है, दूसरे वृक्ष से सजातीय भेद होता है और शिला आदि से विजातीय भेद होता है, उसी प्रकार सद्ब्रह्मरूप वस्तु में यदि कोई इस भेदत्रैविध्य की कल्पना करे, तो श्रुति **एकमेवाद्वितीयम्** कहकर 'एकम्' से ऐक्य, 'एव' से अवधारण तथा 'अद्वितीय' से द्वैतनिषेध के द्वारा इस भेदत्रैविध्य का निराकरण करती है।"

किन्तु कुन्दकुन्द ने आत्मद्रव्य में गुणपर्यायों का अस्तित्व प्रतिपादित कर गुणपर्याय-रूप द्वैत स्वीकार किया है, अनन्त आत्माओं की सत्ता का वर्णन कर सजातीय द्वैत भी मान्य किया है तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल

---

१२७. "पुरुषः --- विक्रियाहेत्वाभावाच्च कूटस्थनित्यः।" ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य / अध्याय १ / पाद १ / अधिकरण ४ / सूत्र ४ / पृ.२०।

द्रव्यों की सत्ता बतलाकर विजातीय द्वैत को भी मान्यता प्रदान की है। यह बात तो स्वयं मालवणिया जी ने स्वीकार की है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने छह द्रव्यों, नौ पदार्थों और सात तत्त्वों की श्रद्धा करनेवाले जीव को सम्यग्दृष्टि कहा है। यथा—

छद्दव्व णवपयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो॥ १९॥ दं.पा.।

निम्नलिखित गाथा में कुन्दकुन्द ने 'जीव' शब्द के साथ बहुवचन का प्रयोग कर आत्मा के बहुत्व का प्रतिपादन किया है—

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं॥ ९०॥ पं.का.।

अधोवर्णित गाथा में कुन्दकुन्द ने सर्वज्ञ के अनुसार द्रव्य को गुणपर्यायों का आश्रय कहा है—

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू॥ १०॥ पं.का.।

ये गाथाएँ इस बात की साक्षी हैं कि ब्रह्माद्वैत या विज्ञानाद्वैत के साथ कुन्दकुन्द का दूर का भी नाता नहीं है। वे सभी प्रकार से द्वैतवादी हैं। यद्यपि उन्होंने द्रव्य-गुण-पर्याय या धर्म-धर्मी के प्रदेशगत अभेद की अपेक्षा निश्चयनय से प्रत्येक द्रव्य के अद्वैत[१२८] अर्थात् अखण्डता या निरवयवता का प्रकाशन किया है, तथापि संज्ञादिभेद की अपेक्षा उनके पारस्परिक अन्यत्व का प्रकाशन कर व्यवहारनय से द्रव्यगत द्वैत का भी निरूपण किया है। **इस प्रकार द्वैताद्वैत युग्म अर्थात् अनेकान्त के रूप में भी कुन्दकुन्द ने द्वैतवाद का ही प्रतिपादन किया है।**

तथा ब्रह्माद्वैत में ब्रह्म के अतिरिक्त एवं विज्ञानाद्वैत में ज्ञान के अतिरिक्त द्रव्यान्तर का अस्तित्व अस्वीकार किया गया है। इसलिए उनमें द्रव्यान्तर के साथ ज्ञेयज्ञायक-सम्बन्ध घटित नहीं हो सकता, मात्र स्व के साथ ही घटित हो सकता है। अतः उक्त अद्वैतवादों में ज्ञेयज्ञायक-सम्बन्ध की अपेक्षा भी ऐकान्तिक अद्वैत मान्य है। किन्तु कुन्दकुन्द ने स्व और पर दोनों के साथ आत्मा का ज्ञेयज्ञायक-सम्बन्ध बतलाया है। यथा—

---

१२८. अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्
तत्सामान्य-विशेषरूप -विरहात्सास्तित्वमेव त्यजेत्।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्ति चित्॥ १८३॥ समयसार-कलश।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

णाणं परप्पयासं ववहारणयेण दंसणं तम्हा।
अप्पा परप्पयासो ववहारणयेण दंसणं तम्हा॥ १६४॥ नि.सा.।

णाणं अप्पपयासं णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा॥ १६५॥ नि.सा.।

अनुवाद—"व्यवहारनय से ज्ञान परप्रकाशक है, इसलिए दर्शन परप्रकाशक है। व्यवहारनय से आत्मा परप्रकाशक है, इसलिए दर्शन पर प्रकाशक है। निश्चयनय से ज्ञान स्वप्रकाशक है, अतः दर्शन स्वप्रकाशक है। निश्चयनय से आत्मा स्वप्रकाशक है, अत एव दर्शन स्वप्रकाशक है।"

यह बात स्वयं मालवणिया जी ने पूर्व में कुन्दकुन्द के ज्ञानविषयक स्वपर-प्रकाशकत्व-मत की चर्चा करते हुए स्वीकार की है। इस प्रकार कुन्दकुन्द के अनुसार स्व के साथ ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध होने से **ज्ञेयज्ञायक-अद्वैत** तथा पर के साथ ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध होने से **ज्ञेयज्ञायक-द्वैत**, दोनों फलित होते हैं। **अतः कुन्दकुन्द ने ज्ञेयज्ञायक-द्वैताद्वैत-युग्म के रूप में भी द्वैतवाद का ही प्ररूपण किया है।** निम्नलिखित गाथा में निश्चय और व्यवहारनयों के आश्रय से इसी द्वैत का प्रकाशन किया गया है—

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥ १५९॥ नि.सा.।

अनुवाद—"व्यवहारनय से केवली भगवान् सब को जानते-देखते हैं, किन्तु निश्चयनय से आत्मा को ही जानते-देखते हैं।"

तथा कुन्दकुन्द ने जो द्रव्य-गुण-पर्याय या धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी, कर्त्ता-कर्म, भोक्ता-भोग्य, ज्ञाता-ज्ञेय आदि के प्रदेशगत अभेद की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य के अद्वैतभाव (अखण्डता) का प्रकाशन किया है, वह उनकी अपनी दार्शनिक देन नहीं है, अपितु उन्होंने तत्त्वों के जिनोपदिष्ट अनेकान्तस्वरूप को ही प्रतिपादित किया है। आचार्य अमृतचन्द्र ने **अनेकान्त** का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

"--- **ज्ञानमात्रस्यात्मवस्तुनः स्वयमेवानेकान्तत्वात्। तत्र यदेव तत्तदेवातत् यदेवैकं तदेवानेकं यदेव सत्तदेवासत् यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुत्वनिष्पादक-परस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकान्तः।**"(समयसार / स्याद्वादाधिकार)।

अनुवाद—"ज्ञानमात्र आत्मवस्तु स्वयं अनेकान्त है। तथा जो वस्तु तत् है वही अतत् है, जो एक है वही अनेक है, जो सत् है वही असत् है, जो नित्य है वही अनित्य है, इस प्रकार एक वस्तु के वस्तुत्व के निष्पादक परस्पर-विरुद्ध शक्ति-युगल का प्रकाशित होना अनेकान्त कहलाता है।"

आचार्य समन्तभद्र ने भी कहा है—'**अभेदभेदात्मकमर्थतत्त्वम्**' (युक्त्यनुशासन/ ७)= वस्तु अभेदात्मक और भेदात्मक उभयरूप है। '**अनेकमेकं च तदेव तत्त्वम्**' (स्वयम्भूस्तोत्र / २२) = जो वस्तु अनेकरूप है, वही एकरूप है।

माननीय मालवणिया जी ने भी स्वीकार किया है कि "**आगमों में भी द्रव्य और गुणपर्याय के अभेद का कथन मिलता है।**" (न्या.वा.वृ./प्रस्ता./पृ.१२१)।

इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय या धर्म-धर्मी का प्रदेशगत अभेद अर्थात् प्रत्येक द्रव्य का अद्वैतस्वभाव (अखण्डता, निरवयवता) जिनोपदिष्ट वस्तुस्वरूप है। कुन्दकुन्द ने इसी का निश्चयनय के द्वारा प्रकाशन किया है। मालवणिया जी भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं—

"**आगम में जहाँ द्रव्य और पर्याय का भेद और अभेद माना गया है, वहाँ आचार्य (कुन्दकुन्द) स्पष्ट करते हैं कि द्रव्य और पर्याय का भेद व्यवहार के आश्रय से है, जब कि निश्चय से दोनों का अभेद है।**" (न्या.वा.वृ./प्रस्ता./पृ.११९-१२०)।

मालवणिया जी यह भी मानते हैं कि **निश्चय और व्यवहार नयों का उल्लेख आगमों में है।** भगवान् महावीर ने इन दोनों नयों के आश्रय से गौतम के प्रश्नों का समाधान किया था (भगवतीसूत्र / १८.६ / न्या.वा.वृ. / प्रस्ता. / पृ.५४)।

इन प्रमाणों से तथा मान्य मालवणिया जी के स्वकीय वचनों से सिद्ध है कि कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में जो प्रत्येक द्रव्य के कथंचित् अद्वैतस्वरूप का प्रतिपादन किया है, वह उनकी अपनी देन नहीं है, अपितु भगवान् महावीर के उपदेश का अंग है। तथा उसका प्रतिपादन कर कुन्दकुन्द ने जैनदर्शन को ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद के निकट लाकर खड़ा नहीं किया, अपितु जैनदर्शन के **द्वैताद्वैतयुग्मरूप द्वैतवाद** का ही प्रकाशन किया है। द्वैत और अद्वैत दो का मेल द्वैत ही तो होता है।

अपने उपर्युक्त वचनों से इस तथ्य को स्वीकार करते हुए भी कि (जैन) आगमों में भी द्रव्य और गुणपर्याय के अभेद का कथन मिलता है, मालवणिया जी ने यह कैसे लिख दिया कि "कुन्दकुन्द के सामने विज्ञानाद्वैत एवं ब्रह्माद्वैत का आदर्श था। उसका अनुकरण कर उन्होंने अपने प्रतिपादनों से जैनदर्शन और अद्वैतवाद का अन्तर बहुत कम कर दिया और जैनदर्शन को अद्वैतवाद के निकट रख दिया।" उनका यह कथन बड़े आश्चर्य और खेद का विषय है। क्योकि यह स्ववचन विरोधी है।

दिगम्बर-आगमों के समान श्वेताम्बर-आगमसाहित्य में संग्रहनय की अपेक्षा भी अद्वैतवाद माना गया है। आगम के आधार पर रचित माने गये **तत्त्वार्थाधिगमभाष्य**

में सत्सामान्य की अपेक्षा समस्त पदार्थों में एकत्व या अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है, यथा "**सर्वमेकं सदविशेषात्**" (१/३५/पृ.६५)। साथ ही अपेक्षाभेद से द्वित्व, त्रित्व आदि भी प्रतिपादित किये गये हैं, यथा "**सर्वं द्वित्वं जीवाजीवात्मकत्वात्, सर्वं त्रित्वं द्रव्यगुणपर्यायावरोधात् ---।**" (१/३५)। इसी संग्रहनयात्मक अद्वैत का निरूपण **धवला** में किया गया है—"**तत्र सत्तादिना यः सर्वस्य पर्यायकलङ्काभावेन अद्वैतत्वमध्यवस्यति शुद्धद्रव्यार्थिकः स संग्रहः**" (ष.खं./पु.९/४,१,४५/पृ.१७०)।

यदि इस अद्वैतवाद का प्रतिपादन जैनदर्शन को ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद के निकट लाकर रखना माना जाय, तो यह मानना होगा कि यह कार्य **सुधर्मा स्वामी** आदि सभी प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों ने भी किया है। किन्तु यह माननीय मालवणिया जी को मान्य नहीं हो सकता। क्यों? इसके उत्तर में वे यही कहेंगे कि श्वेताम्बराचार्यों को मान्य अद्वैतवाद ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद से भिन्न है। श्वेताम्बराचार्यों को मान्य अद्वैतवाद द्वैतसापेक्ष है, जबकि ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद द्वैतनिरपेक्ष है। कुन्दकुन्द को मान्य अद्वैतवाद भी द्वैतसापेक्ष है। अर्थात् कुन्दकुन्द-प्रतिपादित जैन-अद्वैतवाद ब्रह्माद्वैतवाद एवं विज्ञानाद्वैतवाद के समान ऐकान्तिक नहीं है, अपितु प्रतिपक्षी द्वैतवाद को भी स्वीकार करने के कारण अनैकान्तिक है। इस तरह कुन्दकुन्द-प्रतिपादित **अनैकान्तिक जैन-अद्वैतवाद** तथा प्रतिपक्षी **ऐकान्तिक ब्रह्माद्वैतवाद** एवं **विज्ञानद्वैतवाद** के बीच उतनी ही दूरी है, जितनी उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव के बीच। अतः मालवणिया जी ने कुन्दकुन्द पर जैनदर्शन को ब्रह्माद्वैतवाद या विज्ञानाद्वैतवाद के निकट लाकर रखने का जो आरोप लगाया है वह असत्य, युक्तिप्रमाणविरुद्ध, पक्षपातपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण है।

२.२. शाश्वत, उच्छेद, शून्य, विज्ञान आदि वस्तुधर्मों की संज्ञाएँ

मालवणिया जी का मत

'पंचास्तिकाय' में "**अत्र जीवाभावो मुक्तिरिति निरस्तम्**" (समयव्याख्या) तथा "**अथ जीवाभावो मुक्तिरिति सौगतमतं विशेषेण निराकरोति**" (तात्पर्यवृत्ति), इन उत्थानिकाओं के साथ निम्नलिखित गाथा कही गयी है—

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे॥ ३७॥

अनुवाद

उत्थानिका—"इस गाथा में 'जीव का अभाव हो जाना मुक्ति है' इस मत को निरस्त किया गया है। (समयव्याख्या)। 'अब जीव का अभाव मुक्ति है' इस

बौद्धमत का निराकरण किया जा रहा हैं।'' (तात्पर्यवृत्ति)—

गाथा—''यदि मोक्षावस्था में जीव का अभाव माना जाय, तो जीव द्रव्यरूप से **शाश्वत** है, यह कथन संगत नहीं होगा और नित्य जीवद्रव्य का प्रतिसमय पर्याय की अपेक्षा **उच्छेद** (विनाश) होता है, यह कथन भी घटित नहीं होगा, क्योंकि जब मोक्षावस्था में जीव का अस्तित्व ही नहीं रहेगा, तब पर्याय की अपेक्षा उच्छेद किसका होगा? तथा सर्वदा नयी-नयी पर्याय का आविर्भाव **भव्यत्व** है एवं सदा पूर्व-पूर्व पर्याय का विनाश **अभव्यत्व**। इन दोनों धर्मों का अस्तित्व भी मोक्ष में जीव का सद्भाव न होने से उपपन्न नहीं होगा। इसी प्रकार जीव द्रव्य में अन्य द्रव्य का अभाव **शून्यत्व** तथा स्वस्वरूप का सद्भाव **अशून्यत्व** है। मोक्ष में जीव की सत्ता न रहने पर इन दोनों धर्मों की सत्ता भी घटित नहीं होगी। तथैव सिद्धों में केवलज्ञान का सद्भाव **विज्ञान** का सद्भाव है और क्षायोपशमिक ज्ञान का अभाव **अविज्ञान** का सद्भाव। मोक्ष के अनन्तर जीव की सत्ता न रहने पर इन दोनों भावों की भी सत्ता संभव नहीं होगी। इस प्रकार मोक्षावस्था में जीव के सद्भाव के बिना इन आठ धर्मों का सद्भाव उपपन्न नहीं होता, अतः अन्यथा अनुपपद्यमान होने से ये आठ धर्म मोक्षावस्था में जीव का सद्भाव सूचित करते हैं।''[१२९]

इन आठ धर्मों के अस्तित्व का प्रतिपादन कर आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्षावस्था में जीव के अस्तित्व का प्रतिपादन किया है, जिससे 'जीव का अभाव मुक्ति है' इस **बौद्धमत** का निरसन हो जाता है।

पञ्चास्तिकाय की इस गाथा में प्रयुक्त 'शाश्वत', 'उच्छेद', 'शून्य', 'विज्ञान' आदि शब्दों को मालवणिया जी ने **शाश्वतवाद, उच्छेदवाद, शून्यवाद** आदि दार्शनिक वादों का वाचक मान लिया है और कहा है कि ''तत्कालीन नाना विरोधी वादों का सुन्दर समन्वय कुन्दकुन्द ने परमात्मा के स्वरूप-वर्णन के बहाने कर दिया है। उससे

---

१२९. क—''द्रव्यं द्रव्यतया शाश्वतमिति, नित्ये द्रव्ये पर्यायाणां प्रतिसमयमुच्छेद इति, द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्यायैरभाव्यमिति, द्रव्यमन्यद्रव्यैः सह सदा शून्यमिति, द्रव्यं स्वद्रव्येण सदाऽशून्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनन्तं ज्ञानं क्वचित्सान्तं ज्ञानमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनन्तं क्वचित्सान्तमज्ञानमिति। एतदन्यथानुपपद्यमानं मुक्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति।'' समयव्याख्या / पञ्चास्तिकाय / गा.३७।

ख—''--- केवलज्ञानगुणेन विज्ञानं, विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञानेन परिज्ञानादविज्ञानमिति। -- इदं तु नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते तदस्ति-त्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति।'' तात्पर्यवृत्ति / पञ्चास्तिकाय / गा. ३७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in